पंचास्तिकायसंग्रह
महामण्डल विधान

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पी-एच.डी., डी-लिट्

गाथाओं का पद्यानुवाद

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : 5 हजार
(26 जनवरी, 2019 ई.)
गणतंत्र दिवस

प्रस्तुत संस्करण में कीमत करनेवाले दातारों की सूची

1. डॉ. बाबूलालजी एवं प्रणव चौधरी, कोहेफिजा, भोपाल	2,100
2. श्री ताराचन्दजी सोगानी, जयपुर	2,100
3. श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई) ध.प. श्री अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा	1,100
कुलयोग	**5,300**

मूल्य : **15 रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

अनुक्रमणिका

1.	पंचास्तिकाय संग्रह	4
2.	प्रक्षाल पाठ	5
3.	विनय पाठ	8
4.	पूजा पीठिका	10
5.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	15
6.	मंगलाचरण	19
7.	पंचास्तिकायसंग्रह पूजन	20
8.	पंचास्तिकायसंग्रह प्रथम श्रुतस्कन्ध पूजन	25
9.	अर्घ्यावली	28
10.	जयमाला	57
11.	पंचास्तिकायसंग्रह द्वितीय श्रुतस्कन्ध पूजन	59
12.	अर्घ्यावली	64
13.	जयमाला	82
14.	महाऽर्घ्य	83
15.	शान्तिपाठ/विसर्जन	84
16.	पंचास्तिकायसंग्रह भक्ति	87

प्रकाशकीय

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल को गद्य लेखन पर तो महारत हासिल है ही, पद्य लेखन में भी कोई उनका सानी नहीं है। पश्चात्ताप खण्डकाव्य व वैराग्य जैसे महाकाव्यों की रचना के उपरान्त दिगम्बर जैन समाज के सर्वमान्य आचार्य कुन्दकुन्दप्रणीत पंचपरमागमों पर समयसार महामण्डल विधान, प्रवचनसार महामण्डल विधान, नियमसार महामण्डल विधान, अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान, योगसार महामण्डल विधान लिखकर आपने यह सिद्ध भी कर दिया है। इन विधानों में प्राकृत की मूल गाथाओं एवं इनकी टीका में समागत कलशों का रसास्वादन भी पाठकों ने अन्तर्मन से किया।

इसी शृंखला में अब आपने पंचास्तिकायसंग्रह महामण्डल विधान को अपनी लेखनी का विषय बनाया है, निश्चित ही पूर्व विधानों की भांति इस कृति का समुचित समादर होगा।

आपकी महत्वपूर्ण कृतियाँ धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय, बारह भावना : एक अनुशीलन, परमभावप्रकाशक नयचक्र, चैतन्यचमत्कार, निमित्तोपादान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर, शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, आत्मा ही है शरण और गोम्मटेश्वर बाहुबली : एक नया चिन्तन आदि प्रमुख हैं।

अब तक आपके साहित्य पर तीन छात्रों ने शोधकार्य किया है – जिनमें डॉ. महावीरप्रसाद जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' विषय पर और डॉ. सीमा जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन' विषय पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से तथा डॉ. राजेन्द्र संगवे द्वारा मद्रास विश्वविद्यालय से 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन' विषय पर पी–एचडी की उपाधि प्राप्त की है।

इसके साथ ही अरुणकुमार जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य', नीतू चौधरी द्वारा 'शिक्षा शास्त्री परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन', ममता गुप्ता द्वारा 'धर्म के दशलक्षण : एक अनुशीलन' तथा शिखरचन्द जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध लिखे हैं जो आपके साहित्यिक अवदान के जीवन्त दस्तावेज हैं।

आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु को प्राप्त हों और नित नूतन सृजन कर हम सबका इसी प्रकार मार्ग प्रशस्त करते रहें – यही पवित्र भावना है।

गाथाओं का पद्यानुवाद पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने किया है। इस विधान में उत्थानिका व मंत्र बनाने तथा प्रूफ रीडिंग का कार्य पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने श्रमपूर्वक किया है। आपके उक्त कार्य में अच्युतकान्त शास्त्री का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अतः हम आप सभी के आभारी हैं।

सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्द शर्मा तथा आकर्षक मुखपृष्ठ और प्रकाशन के लिए श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देते हैं।

हमें विश्वास है कि इस विधान के निमित्त से यह विधान करने वाले को पंचास्तिकाय संग्रह की विषयवस्तु का सहज ही स्वाध्याय होगा।

वे इसमें वर्णित अपनी शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर उसके आश्रय से अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें – इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

५ जनवरी २०१९ ई. **– ब्र. यशपाल जैन,** प्रकाशन मंत्री

पंचास्तिकाय संग्रह

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

आचार्य कुन्दकुन्द जैसे समर्थ आचार्य द्वारा प्रणीत यह 'पंचास्तिकाय-संग्रह' नामक ग्रन्थ जिन-सिद्धान्त और जिन-अध्यात्म का प्रवेश द्वार है। इसमें जिनागम में प्रतिपादित द्रव्यव्यवस्था व पदार्थव्यवस्था का संक्षेप में प्राथमिक परिचय दिया गया है।

जिनागम में प्रतिपादित द्रव्य एवं पदार्थ व्यवस्था की सम्यक् जानकारी बिना जिन-सिद्धान्त और जिन-अध्यात्म में प्रवेश पाना संभव नहीं है। अतः यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नामक ग्रन्थ सर्वप्रथम स्वाध्याय करने योग्य है।

इस ग्रन्थ के स्पष्ट रूप से दो खण्ड हैं, जिन्हें 'समयव्याख्या' नामक टीका में आचार्य अमृतचन्द्र 'श्रुतस्कन्ध' नाम से अभिहित करते हैं।

प्रथम खण्ड (श्रुतस्कन्ध) में षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय का वर्णन है और द्वितीय खण्ड (श्रुतस्कन्ध) में नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है।

प्रथम खण्ड के समस्त प्रतिपादन का उद्देश्य शुद्धात्मतत्व का सम्यक्ज्ञान कराना है; तथा दूसरे खण्ड के प्रतिपादन का उद्देश्य पदार्थ-विज्ञान पूर्वक मुक्ति का मार्ग अर्थात् उक्त शुद्धात्मतत्व की प्राप्ति का मार्ग दर्शाना है।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव द्वारा रचित पंचास्तिकाय एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है; जिसके अध्ययन बिना समयसार, प्रवचनसार जैसे महान ग्रन्थों का मर्म समझ पाना सहज सम्भव नहीं है; तथापि उनकी अपेक्षा इसके कम प्रचलित होने का कारण द्रव्यसंग्रह द्वारा इसकी विषय-वस्तु सम्बन्धी जानकारी की पूर्ति हो जाना ही रहा है।

समयसार के समान ही निरन्तर इसके पठन-पाठन की आवश्यकता है। आचार्य अमृतचन्द्र की 'समयव्याख्या' टीका से अलंकृत इस पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ के अध्ययन-मनन में वस्तु व्यवस्था के सम्यग्ज्ञान के साथ-साथ जो आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होगा, वह अन्यत्र असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। यह ग्रन्थराज जिनागम का प्रवेशद्वार है।

अतः आत्मार्थी बन्धुओं से हार्दिक अनुरोध है कि वे इसका स्वाध्याय अवश्य करें; एक बार नहीं, बार-बार करें। ●

प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

भक्तिभाव से हम करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
अरे विकारी भाव का हो जावे प्रक्षाल।। १ ।।

दिन का शुभ आरंभ हो चित्त रहे निर्भ्रान्त[1]।
प्रतिमा के प्रक्षाल से मन हो जावे शान्त।। २ ।।

(हरिगीतिका)

यद्यपि इस काल में अरहंत जिन उपलब्ध ना।
किन्तु हमारे भाग्य से जिनबिंब तो उपलब्ध हैं।।
जिनबिंब का प्रक्षाल पूजन और दर्शन भाव से।
जो भाग्यशाली करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।। ३ ।।

वे भाग्यशाली भव्य निज हित कार्य में नित रत रहें।
आपके गुणगान वे नित निरन्तर करते रहें।।
निज आतमा को जानकर वे शीघ्र ही भव पार हों।
निज आतमा का ध्यान धर वे भवजलधि से पार हों।। ४ ।।

जिसतरह समव-शरण में अरहंत जिन विद्यमान हैं।
और उनका इस जगत में उच्चतम स्थान है।।
व्यवहार होता जिसतरह का अरे उनके सामने।
बस उसतरह की विनय हो जिनमूर्तियों के सामने।। ५ ।।

---

१. जिसमें कोई सन्देह या भ्रम न हो।

यदि मूर्तियाँ हों प्रतिष्ठित स्थापना निक्षेप से।
अरहंत सम ही पूज्य हैं जिनमार्ग में व्यवहार से।।
अरे कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंब जितने लोक में।
वे पूज्य हैं शत इन्द्र कर जिनशास्त्र के आलोक में।। ६ ।।

अति विनयपूर्वक बिंब का प्रक्षाल होना चाहिये।
अर दिवस में प्रत्येक दिन इकबार होना चाहिये।।
स्वस्थ तन-मन स्वच्छ पट अर सावधानी पूर्वक।
सद्भाव से ही पुरुष को प्रक्षाल करना चाहिये।। ७ ।।

प्रत्येक नर-नारी अरे पूजन करे प्रत्येक दिन।
प्रक्षाल तो बस एक जन इकबार ही दिन में करे।।
प्रक्षाल पूजन अंग ना प्रत्येक को अनिवार्य ना।
प्रक्षाल तो इक बिंब का इक बार होना चाहिये।। ८ ।।

छवि वीतरागी शान्त मुद्रा कही है जिनदेव की।
जिनमूर्ति की भी शान्त मुद्रा वीतरागी छवि कही।।
'जिनमूर्तियाँ हों मुस्कुराती' - कभी हो सकता नहीं।
और हंसना वीतरागी भाव हो सकता नहीं।। ९ ।।

जब वीतरागी जिनवरों का न्हवन हो सकता नहीं।
एवं दिगम्बर मुनिवरों का न्हवन हो सकता नहीं।।
जब मुनिवरों के मूलगुण में एक गुण अस्नान है।
तब प्रतिष्ठित मूर्तियों का न्हवन होवे किस तरह?।। १० ।।

बस इसलिये जिनमूर्तियों को स्वच्छ रखने के लिये।
और अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये।।
अरे प्रासुक नीर से प्रक्षाल करना चाहिये।
न्हवन ना अभिषेक ना प्रक्षाल होना चाहिये।। ११ ।।

जिनबिंब का स्पर्श महिला वर्ग कर सकता नहीं।
जिनबिंब का प्रक्षाल महिला वर्ग कर सकता नहीं।।
दिगम्बर जिनबिंब से सम्पूर्ण महिला वर्ग को।
एक सीमा तक सुनिश्चित दूर रहना चाहिये।। १२ ।।

क्योंकि ये जिनबिंब जिनवरदेव के प्रतिबिंब हैं।
वीतरागी सर्वज्ञानी देव के ही बिंब हैं।।
उन बिंब का जिनबिंब का अति हर्ष से उल्लास से।
प्रक्षाल सब जन कर रहे अत्यन्त निर्मल भाव से।। १३ ।।

जिनबिंब का प्रक्षाल जो जन करें निर्मलभाव से।
और पूजन करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।।
जिन शास्त्र का स्वाध्याय एवं रहें संयमभाव से।
वे भव्यजन भवपार होंगे स्वयं के आधार से।। १४ ।।

(दोहा)

महाभाग्य हमने किया जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
चरणों में जिनबिंब के सदा नवावें भाल।। १५ ।।

भक्तिभाव से जो करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
निज आतम का ध्यान धर वे होवें भव पार।। १६ ।।

विनय पाठ

(दोहा)

अरहंतों को नमन कर नमूँ सिद्ध भगवान।
आचारज उवझाय अर सर्व साधु गुणखान।। १ ।।

मोक्ष मोक्ष के मार्ग में विद्यमान जो जीव।
यथायोग्य नम कर प्रभो वन्दन करूँ सदीव।। २ ।।

चौबीसों जिनराज की दिव्यध्वनि अनुसार।
ज्ञानिजनों ने जो लिखी वाणी विविधप्रकार।। ३ ।।

नय–प्रमाण से विविधविध कही तत्त्व की बात।
भविकजनों के लिये जो एकमात्र आधार।। ४ ।।

सब द्रव्यों के सभी गुण अर सामान्य–विशेष।
आज सभी को सहज ही हैं उपलब्ध अशेष।। ५ ।।

जिनवाणी उपलब्ध है उसे बतावनहार।
बहुत अधिक दुर्लभ नहीं उसके जाननहार।। ६ ।।

मोहनींद में जो पड़े नहीं कोई आधार।
साधर्मीजन कम नहीं उन्हें जगावनहार।। ७ ।।

सारा जग बेचेत है मोहनींद के द्वार।
किन्तु हमें उपलब्ध हैं मार्ग बतावनहार।। ८ ।।

महाभाग्य से प्राप्त हो देव–गुरु संयोग।
पर जिनवाणी मात की शरण सहज संयोग।। ९ ।।

उसके अध्ययन मनन से चिन्तन से निजतत्व।
जाना जाता सहज ही होता है सम्यक्त्व।। १० ।।

जिनवाणी के मर्म को अरे जानने योग्य।
ज्ञान प्रगट पर्याय में होवे सहज संयोग[१]।। ११ ।।

और कषायें मन्द हों भाव रहें निष्काम।
एक आतमा में लगे छोड़ हजारों काम[२]।। १२ ।।

देव–गुरु संयोग या जिनवाणी के योग।
तत्व श्रवण में मन लगे और न मन में रोग[३]।। १३ ।।

अरे क्षयोपशम विशुद्धि और देशना लब्धि।
जिसके ये तीनों बने उसे तत्त्व उपलब्धि।। १४ ।।

आतम में अति अधिक रुचि जब होवे सर्वांग।
विशेष तरह की योग्यता वह लब्धि प्रायोग्य।। १५ ।।

आतम का उपयोग जब आतम में रमजाय।
करणलब्धि है आतमा आतम माँहि समाय।। १६ ।।

करणलब्धि के अन्त में आतम अनुभव होय।
सम्यग्दर्शन प्राप्त हो मन रोमांचित होय।। १७ ।।

तीर्थंकर चौबीस ही हमें जगावनहार।
जागें आतम में लगें हो जावें भव पार।। १८ ।।

देव–शास्त्र–गुरु की कृपा से कटता संसार।
नमन करूँ इन सभी को भगवन् बारंबार।। १९ ।।

अरे हमारा आतमा आतम में रम जाय।
अन्य न कोई चाह मन आतम माहि समाय।। २० ।।

---

१. क्षयोपशम लब्धि २. विशुद्धि लब्धि ३. देशना लब्धि

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

(वीर)

अरहंतों को सब सिद्धों को आचार्यों को करूँ प्रणाम।
उपाध्याय एवं त्रिलोक के सर्व साधुओं को अभिराम।। १ ।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि।

अरे चार मंगल हैं जग में अर्हत सिद्ध साहु मंगल।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम मंगल।। २ ।।

और चार ही लोकोत्तम अर्हत सिद्ध साहु उत्तम।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम उत्तम।। ३ ।।

अरे चार की शरणा जाऊँ अर्हत सिद्ध साहु शरणा।
और केवली कथित लोक में जाऊँ परम धरम शरणा।। ४ ।।

(हरिगीत)

परमेष्ठी सम शुद्धात्मा भी शरण है इस लोक में।
है परम मंगल परम उत्तम शरण भी इस लोक में।।
व्यवहार से परमेष्ठी परमार्थ से शुद्धात्मा।
की शरण में नित हम रहें जिनमार्ग के आलोक में।। ५ ।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

मंगल विधान

(वीर)

हो अपवित्र-पवित्र और सुस्थित हो अथवा दुःस्थित हो।
सब पापों से छूट जाय वह णमोकार को ध्यावे जो।। १ ।।

हो अपवित्र-पवित्र अधिक क्या किसी अवस्था में भी हो।
अन्दर-बाहर से पवित्र निज परमातम को ध्यावे जो।। २ ।।

अपराजित यह मंत्र सभी विघ्नों का परमविनाशक है।
सभी मंगलों में मंगल यह पावन पहला मंगल है।। ३ ।।

सब पापों का नाशक है यह महामंत्र मंगलमय है।
सभी मंगलों में यह अद्भुत पावन पहला मंगल है।। ४ ।।

'अर्हं' ये अक्षर परमेष्ठी परमब्रह्म के वाचक हैं।
सिद्धचक्र के बीज मनोहर नमस्कार हम करते हैं।। ५ ।।

अष्टकर्म से रहित मोक्षलक्ष्मी के सुखद निकेतन हैं।
सम्यक्त्वादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध को नमते हैं।। ६ ।।

जिनवर की स्तुति करने से विघ्न विलय हो जाते हैं।
भूत डाकिनी एवं विषभय सभी विघ्न टर जाते हैं।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

(वीर)

जल चन्दन अक्षत सुमन चरु, अर दीप धूप फल द्रव्यमयी।
अर्घ्य समर्पण करता हूँ मैं श्रीजिनवर आनन्दमयी।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(वीर)

अनन्तचतुष्टय पद के धारी स्याद्वाद के नायक की।
पूजन करता नमस्कार कर तीन लोक परमेश्वर की।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि उनके सत्कर्मों के हेतु।
मेरे द्वारा कही जा रही यह जैनेन्द्रयज्ञविधि सेतु।। १ ।।

जिनपुंगव त्रैलोक्य गुरु की स्वस्ति हो कल्याणमयी।
जिनका रे सुस्थित स्वभाव महिमामय है कल्याणमयी।।
सहज प्रकाशमयी दृगज्योति मंगल मंगलदाता है।
स्वस्ति मंगल अद्भुत वैभव अति आनन्द प्रदाता है।। २ ।।

रे स्वभाव–परभाव सभी को करे प्रकाशित निर्मल ज्ञान।
अमृतमय वह ज्ञान मनोहर उछले अन्तर महिमावान।।
तीन लोक अर तीनकाल में विस्तृत है अति व्यापक है।
तीन लोक एवं त्रिकाल की पर्यायों का ज्ञायक है।। ३ ।।

यथायोग्य है द्रव्य शुद्धि पर भावशुद्धि पूरी चाहूँ।
अरे विविध आलंबन लेकर शुद्धभाव को अपनाऊँ।।
जो सचमुच भूतार्थ पुरुष हैं पावन हैं अतिपावन हैं।
उनकी पूजा करूँ ध्यान से जो अति ही मनभावन हैं।। ४ ।।

जिनकी केवलज्ञान ज्योति में सभी भाव भासित होते।
वे अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम परम भाव भावित होते।।
उनकी केवलज्ञान बह्नि में मैं अपने पूरे मन से।
सभी पुण्य अर्पित करता हूँ निकला चाहूँ भव वन से।। ५ ।।

ॐ यज्ञप्रतिज्ञायै प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति मंगल पाठ

(चौपाई)

स्वस्ति श्री श्री ऋषभ जिनेश, स्वस्ति करें जिनवर अजितेश।
संभव करें असंभव द्वेष, अभिनन्दन दुख हरें अशेष।। १ ।।
सुमति प्रदाता सुमति जिनेश, पद्मप्रभ जिनवर पद्मेश।
जय सुपार्श्व पारस सम जान, चन्द्रप्रभ जिन चन्द्र समान।। २ ।।

सुविधिनाथ विधिनाशनहार, शीतल शीतलता दातार।
जय श्रेयांश श्रेय करतार, वासुपूज्य शिवसुख दातार।। ३ ।।

विमल विमल जीवन दातार, श्री अनन्त आनन्द अपार।
धर्म कहें संसार असार, शान्ति अनन्त शान्ति दातार।। ४ ।।

कुन्थु कुन्थु के रक्षणहार, अरजिन आनन्द के अवतार।
जीता है मन मल्लि जिनेश, मुनिसुव्रत व्रत धरें अशेष।। ५ ।।

नमि चरणों में नमें नरेश, जीता मन्मथ नेमि जिनेश।
पारस पारस से दातार, वीर अहिंसा के अवतार।। ६ ।।

(दोहा)

चौबीसों जिनराज ही मंगल मंगल हेतु।
स्वस्ति स्वरूप विराजहीं सबको मंगल देतु।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(हरिगीत)

ज्ञानी तपस्वी मुनिवरों को ऋद्धियाँ उपलब्ध हों।
पर ऋद्धियों की सिद्धियों पर रंच न वे मुग्ध हों।।
वे तो निरन्तर लीन रहते आतमा के ज्ञान में।
आतमा के चिन्तवन निज आतमा के ध्यान में।। १ ।।

अरे चौसठ ऋद्धियों में प्रथम केवलज्ञान है।
दूसरी है मनःपर्यय तृतीय अवधीज्ञान है।।
इत्यादि चौसठ ऋद्धियाँ सब ज्ञान का विस्तार है।
रे ज्ञान के विस्तार का न आर है न पार है।। २ ।।

अन्य लौकिक सिद्धियाँ भी ऋद्धियों से प्राप्त हो।
पर मुनिवरों को उन सभी से नहीं कोई राग हो।।
वे तो स्वयं में जम गये वे तो स्वयं में रम गये।
सारे जगत से विमुख हो सद्ज्ञान में परिणम गये।। ३ ।।

आतमा के चिन्तवन में आतमा के ज्ञान में।
वे तो निरन्तर लगे रहते आतमा के ध्यान में।।
कैसे कहें उन मुनिवरों से तुम बताओ हे प्रभो।
निज आतमा को छोड़कर हे प्रभो हम पर ध्यान दो।। ४ ।।

नहीं कोई किसी का कुछ भी करे इस लोक में।
यह जानते हैं सभी आगम ज्ञान के आलोक में।।
सब जानते हैं समझते व्यवहार में यों बह रहे।
उन ऋद्धिधारी ऋषिवरों से प्रभो फिर भी कह रहे।। ५ ।।

रे ऋद्धिधारी मुनिवरो! कल्याण सब जग का करो।
अज्ञान मोहित जगत की दुर्गति मुनिवर परिहरो।।
यह जगत मिथ्यामार्ग तज सन्मार्ग में वर्तन करे।
जिनशास्त्र का स्वाध्याय कर निजज्ञान का मार्जन करे।। ६ ।।

अन्याय और अनीति छोड़े अभक्ष्य भक्षण न करे।
न्याय एवं नीति से सन्मार्ग पर आगे बढ़े।।
होवे अहिंसक आचरण आहार और विहार में।
सावधानी रखें हम व्यवहार में व्यापार में।। ७ ।।

(दोहा)

सभी संत मंगलमयी मंगल के आधार।
मल गाले मंगल करें करें मंगलाचार।। ८ ।।
सभी ऋद्धियों के धनी सभी दिगम्बर संत।
और कछु नहिं चाहिये चाहे भव का अंत।। ९ ।।

इति परमर्षि स्वस्तिमंगलविधानं पुष्पांजलि क्षिपेत्)

-●-

देव–शास्त्र–गुरु पूजन

(दोहा)

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमौं जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर)

आशा की प्यास बुझाने को, अबतक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय–विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता–रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार–ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अबतक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन–रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गँवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प–बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन–रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम–भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद–ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ–कर्म कमाऊँ सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्योः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश–दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त–त्रस्त–अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन–प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अबतक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत–कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद–नय, अनेकान्त–मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म–रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।

मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अबतक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी-ध्यानी-समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते-फिरते सिद्धों-से गुरु चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खान हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचास्तिकायसंग्रह महामण्डल पूजन विधान

मंगलाचरण

(मानव)

जो पूर्ण वीतरागी हैं जो जाने सारे जग को।
निज दिव्यध्वनि द्वारा जो शिवमग बतलाते सबको ।।
शत इन्द्रों से पूजित जो जो हितकारी जन–जन के ।
वे सच्चे देव हमारे हम सब अनुयायी उनके।। १ ।।

जो हुआ आज तक जग में अर आगे भी जो होगा।
वह सब है पूर्ण सुनिश्चित आगे–पीछे ना होगा।।
प्रत्येक द्रव्य का जब जब जो–जो होना है भाई।
तब तब ही वह सब होगा संशय है नहीं जरा भी।। २ ।।

जिनवर की जिनवाणी में जो–जो बातें हैं आई।
अर दिव्यध्वनि के द्वारा जो–जो बातें समझाई।।
वे सब बातें ही जग में वैसी ही होती आई।
यह परमसत्य मनमोहक मन में यह बात समाई।। ३ ।।

जो अपने को पहचाने अपने में अपनेपन को।
रे सफल किया है उनने अपने मानव जीवन को।।
अपने में जमकर रमकर अपने में समा गये हैं।
उन गुरुवर के चरणों में नतमस्तक हो आये हैं।। ४ ।।

(दोहा)

देव–शास्त्र–गुरु चरण की महिमा अपरंपार।
भक्तिभाव से हम सभी नमते बारंबार।। ५ ।।

१

पंचास्तिकायसंग्रह पूजन

स्थापना

(वीर)

कुन्दकुन्द आचार्यदेव की अनुपम कृति अति पावन है।
इसमें पंच अस्तिकायों का प्रतिपादन मन भावन है।।
छहों द्रव्य अर सात तत्त्व अर नव पदार्थ समझाये हैं।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग के विविध रूप बतलाये हैं।। १ ।।

(कुण्डलिया)

प्राकृत की लघु कृति में अनुपम गाथा छन्द।
अरे समाहित हो गये दोनों श्रुत स्कन्ध।।
दोनों श्रुत स्कंध मूल सब विषय आ गये।
अध्यात्म के रंग सभी के हृदय भा गये।।
कुन्दकुन्द के भाव आ गये हैं इस कृति में।
सभी विषय हो गये समाहित इस लघु कृति में।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(वीर)

जल

जन्तु रहित है प्रासुक यह जल क्षीरोदधि के नीर समान।
अर्पण करके नाश करूँ मैं जनम-जरा एवं अवसान[१]।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

१. मृत्यु

चन्दन

भव आतप के मेटनहारे भावों का कर अभिनन्दन।
भक्तिभाव से अर्पित करता ताप निकन्दन यह चन्दन।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अक्षत पद अनन्त सुखमय है अविचल है अविनाशी है।
अक्षत अर्पण कर यह आतम अक्षतपुर प्रत्याशी है।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

यद्यपि जग में सुमन मनोहर जग का मन अपहरण करें।
इनको अर्पण कर नित भविजन काम भाव अपहरण करें।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

जग की भूख बढ़ाते जग में विध-विध के विध-विध पकवान।
भूख वेदना के निग्रह को अर्पण करता ये पकवान।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

स्व–पर प्रकाशक दीपक जग में स्व अर पर का करे प्रकाश।
आतम राम प्रकाशे जग में लोकाकाश अलोकाकाश।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

गृह दुर्गन्धी नाश करे ज्यों जलती धूप धूपघट में।
कर्मों की दुर्गन्ध जलावें शुद्धभाव चेतनघट में।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

सफल होंय ज्यों पुण्यवंत नर सभी लोक के कामों में।
शुद्धभाव से सफल होंयगें सभी मुक्ति के मारग में।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

अर्घ्य प्राप्त हो इस जगती में पुण्य रूप शुभभावों से।
पर अनर्घ्य पद तो मिलता है शुद्धभाव अपनाने से।।
पंचास्तिकाय षट्द्रव्यों एवं नवपदार्थों का आख्यान।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का किया गया इसमें व्याख्यान।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

श्री महावीर गौतम संग नित याद करें हम जिन को।
पंचास्तिकाय के लेखक उन कुन्दकुन्द मुनिवर को।।
नमकर गाथा गाते हैं उनके पावन चरणों की।
परमागम की रचना कर की सीमा आचरणों की।। १ ।।

पंचास्तिकाय में पहले शिवमारग को बतलाया।
दो श्रुतकंधों में बाँटा अर भलीभाँति समझाया।।
पहले में सबसे पहले पंचास्तिकाय समझाये।
फिर द्रव्यों की चर्चा में द्रव्यों के भेद बताये।। २ ।।

फिर दूजे में हे भाई! नवतत्त्वों को समझाया।
और चूलिका में फिर है मोक्षमार्ग बतलाया।।
जिसमें निश्चय रत्नत्रय निश्चयनय से समझाये।
निश्चय के साथ रहें जो ऐसे व्यवहार बताये।। ३ ।।

पंचास्तिकाय संग्रह को श्री कुन्दकुन्द मुनिवर ने।
प्रवचन[१] का सार बताया है पूरे-पूरे मन से।।
इसमें प्रतिपादित वस्तु यदि नहीं समझ में आई।
आगम में परमागम में होगा प्रवेश ना भाई।। ४ ।।

यदि प्रवेश करना है आगम में परमागम में।
तो पढ़ो-पढ़ाओ इसको आओ इसके आँगन में।।
रे समय व्याख्या टीका जो अमृतचन्द्र बनाई।
अनुपम रहस्य खोले हैं अद्‌भुत है अनुपम भाई।। ५ ।।

केवल तृषादि से पीड़ित प्राणी पर विगलित होकर।
चित् में आकुलता होना अज्ञानी की अनुकम्पा।।
ज्ञानी की अनुकम्पा तो भववन में भ्रमित जगत को।
लखकर किंचित् निज मन में ही खेदखिन्न होना है।। ६ ।।

१. दिव्यध्वनि

अज्ञानी की भक्ति में रागादिभाव ही होते।
असली भक्ति तो केवल ज्ञानीजन के ही होती।।
अस्थान में राग नहीं हो अर तीव्र रागज्वर न हो।
इसलिये कदाचित् ज्ञानी भी भक्ति करते दिखते।। ७ ।।

चारित्त के भेद किये दो स्वसमय परसमय जानो।
स्वचारित्र अर परचारित्र भी कहा गया है इनको।।
शुद्धोपयोग परिणति को ही स्वचारित्र कहा है।
उपराग सहित वृत्ति को परचारित्र कहा है।। ८ ।।

स्व-चारित्र ही मुक्तिमग अर बंधमार्ग परचारित्र।
इसतरह अनेकों बातें आई हैं टीकाओं में।।
हैं ऐसी-ऐसी बातें मुनिवर सुधेन्दु[१] टीका में।
हैं अध्यात्म की गहरी-गहरी बातें टीका में।। ९ ।।

सम्पूर्ण शास्त्र का भाई तात्पर्य यही है केवल।
रे वीतरागता रे बस है धर्म निरंजन केवल।।
पंचास्तिकाय में भी तो बस यही बात बतलाई।
बस यही धर्म है सच्चा बस यही समझलो भाई।। १० ।।

पंचास्तिकाय का अध्ययन जन-जन को है आवश्यक।
नवतत्त्वों का आलोढ़न जन-जन को है आवश्यक।।
मुक्तिमार्ग का मंथन जन-जन को है आवश्यक।
रे रत्नत्रय का धारण जन-जन को है आवश्यक।। ११।।

(दोहा)

बतलाया इस ग्रंथ में निर्ग्रन्थों का पंथ।
इस पर चलकर मुक्त हों सभी संत निर्ग्रन्थ।। १२ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१. आचार्य अमृतचन्द्र

२

पंचास्तिकायसंग्रह प्रथम श्रुतस्कन्ध पूजन

स्थापना

(रेखता)

हुआ लिखना जब से आरंभ द्रव्य की चर्चा का आख्यान।
लिखित में किया गया प्रारंभ अरे षट्द्रव्यों का व्याख्यान।।
अरे द्रव्यों का रूप-स्वरूप बताये उनके भेद-प्रभेद।
अरे सबसे पहले यह हुआ हमारे पावन भारतदेश[१]।। १ ।।

सर्वश्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथमतः लिखा यही सद्ग्रन्थ।
द्रव्य का प्रतिपादक यह ग्रन्थ इसी का पहला श्रुतस्कन्ध।।
द्रव्य को दो भागों में किया विभाजित अस्ती-नास्तीकाय।
अरे रे अस्तिकाय हैं पाँच अकेला कालहि नास्तिकाय।। २ ।।

(दोहा)

पहले श्रुतस्कंध की भक्तिभाव उरधार।
करते हम सब विनय से पूजा बारंबार।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

अरे यह रजप्रक्षालक नीर कर्मरज से धूमिल यह लोक।
कर्मरज[२] क्षालक आतमराम प्रकाशित करे अलोकालोक।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

---

१. भरतक्षेत्र २. ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म

चन्दन

मलयगिरि का यह शीतलमलय मिटावे गर्मी का संताप।
किन्तु आतम का शीलस्वभाव मिटावे इस भव का आताप।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अरे क्षतिविहीन वस्तु को अक्षत कहते हैं सब लोग।
नहीं है जिसमें कोई क्षति आत्मा का लक्षण उपयोग।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

पुष्प न हो तो वृक्षों में फलों का होना संभव नहीं।
मुक्ति मग बिन इस आतम का मोक्ष होना भी संभव नहीं।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

अरे भूखों की भूख मिटाय उसे कहते हैं सब नैवेद्य।
सभी दुखों से करता मुक्त आत्मा ही सच्चा नैवेद्य।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

अँधेरा होता दीपक तले तेल–बाती भी उसमें जले।
आतमा बिना तेल–बाती अलोका–लोक प्रकाशित करे।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

धूप से धूमिल हो आकाश और जलने पर जन्तु जलें।
आतमा यदि अपने में रमे कर्म सब धू–धू करके जलें।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

सभी फल अफल हो गये सिद्ध सिद्धपद प्राप्त कराने में।
आत्मा का अनुभव है सिद्ध सिद्धपद प्राप्त कराने में।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

ना सफल हुआ यह अर्घ्य अनर्घ्यपद प्राप्त कराने में।
आत्मा का अनुभव है सफल अनर्घ्यपद प्राप्त कराने में।।
अरे पंचास्तिकाय आगम का यह है पहला श्रुतस्कंध।
प्राथमिक शिष्यों को संक्षिप्त प्राथमिक चर्चा का यह ग्रन्थ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

(इस विधान की अर्घ्यावली में सर्वत्र पंचास्तिकायसंग्रह की गाथाओं का पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल कृत पद्यानुवाद दिया गया है।)

(दोहा)

द्रव्यसंग्रह शास्त्र की पूजन की सानन्द।
अब अर्घ्यावलि में सुनो मूलग्रन्थ के छन्द।।

।। इति पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

अब, सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्ददेव जिनेन्द्र भगवान व जिनवाणी को नमस्कार करके ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(हरिगीत)

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।
अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत–शत नमन।। १।।
सर्वज्ञभाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं।
उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो।। २ ।।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्र–जिनवाणीनमस्कारपूर्वकग्रन्थप्रतिज्ञानिरूपक श्रीपंचास्ति–कायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १ ।।

अब, समय के रूप में पंचास्तिकाय का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

पञ्चास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा।
यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है।। ३।।

(गाथा)

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं।। १ ।।
समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि।। २ ।।
समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं।। ३ ।।

आकाश पुद्गल जीव धर्म अधर्म ये सब काय हैं।
ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान अनन्य हैं।। ४।।

ॐ ह्रीं समयरूपपंचास्तिकायनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २।।

अब, पाँच द्रव्यों का अस्तित्व और कायत्व बताते हैं –

(हरिगीत)

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है।। ५।।

ॐ ह्रीं पंचद्रव्यास्तिकायत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३।।

अब, छह द्रव्यों का अस्तित्व बताते हैं –

(हरिगीत)

त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो।
वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग सह षट् द्रव्य हैं।। ६।।

ॐ ह्रीं षड्द्रव्यास्तित्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४।।

(गाथा)

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता।। ४।।
जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं।। ५।।
ते चेव अत्थिकाया तेक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता।। ६।।

अब, छह द्रव्यों का सामान्य स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
जल–दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व–स्व भाव को।। ७।।

ॐ ह्रीं षड्द्रव्यसामान्यस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५।।

अब, सत्ता (अस्तित्व) का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

सत्ता जनम–लय–ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है।
सर्वार्थ थित सविश्वरूप–रु अनन्त पर्ययवंत है।। ८।।

ॐ ह्रीं अस्तित्वस्वरूपप्रतिपादक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६।।

अब, द्रव्य का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में।
अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है।। ९।।

सद् द्रव्य का लक्षण कहा उत्पाद व्यय ध्रुव रूप वह।
आश्रय कहा है वही जिनने गुणों अर पर्याय का।। १०।।

(गाथा)

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं संग सभावं ण विजहंति।। ७ ।।
सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।। ८ ।।
दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।। ९ ।।
दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जायासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।। १० ।।

उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है।
द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे।। ११।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७।।

अब, द्रव्य का गुण व पर्यायों के साथ अभेद दर्शाते हैं -

पर्याय विरहित द्रव्य नहीं नहि द्रव्य बिन पर्याय है।
श्रमणजन यह कहें कि दोनों अनन्य-अभिन्न हैं।। १२।।

द्रव्य बिन गुण नहीं एवं द्रव्य भी गुण बिन नहीं।
वे सदा अव्यतिरिक्त हैं यह बात जिनवर ने कही।। १३।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-गुण-पर्यायाणांपरस्परानन्यत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८।।

अब, स्याद्वाद शैली से वस्तु के सात भंग कहते हैं -

(हरिगीत)

स्यात् अस्ति-नास्ति-उभय अर अवक्तव्य वस्तु धर्म हैं।
अस्ति-अवक्तव्यादि त्रय सापेक्ष सातों भंग हैं।। १४ ।।

ॐ ह्रीं सप्तभंगप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९।।

(गाथा)

उत्पत्ती व विसाणो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पदधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया।। ११ ।।
पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति।। १२ ।।
दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।। १३ ।।
सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।। १४ ।।

अब, सत् का कभी नाश नहीं होता और असत् का कभी उत्पाद नहीं होता यह बताते हैं – (हरिगीत)

सत्द्रव्य का नहिं नाश हो अरु असत् का उत्पाद ना।
उत्पाद–व्यय होते सतत सब द्रव्य–गुणपर्याय में।। १५।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्य सदुच्छेद–असदुत्पादनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०।।

अब, जीव के गुण–पर्यायों का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय।
देव–नारक–मनुज–तिर्यक् जीव की पर्याय हैं।। १६।।
मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें।
पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो।। १७।।

ॐ ह्रीं जीवगुण–पर्यायस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११।।

अब, द्रव्य का कथंचित् उत्पाद–व्यय होने पर भी उसकी नित्यता को बतलाते हैं –

(हरिगीत)

जन्मे–मरे नित द्रव्य ही पर नाश–उद्भव ना लहे।
सुर–मनुज पर्यय की अपेक्षा नाश–उद्भव हैं कहे।।१८।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्यकथंचिन्नित्यानित्यत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२।।

(गाथा)

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।। १५ ।।
भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा।। १६ ।।
मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो।। १७ ।।
सो चेव जादि मरणं, जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो, देवो मणुसो त्ति पज्जाओ।। १८ ।।

अब, इस गाथा में सर्वथा असत् का उत्पाद व सत् का विनाश नहीं होता यह बताते हैं –

(हरिगीत)

इस भाँति सत् का व्यय नहिं अर असत् का उत्पाद नहिं।
गति नाम नामक कर्म से सुर–नर–नरक ह्न ये नाम हैं।। १९।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्य सर्वथा असदुत्पाद–सदुच्छेदनिषेधक श्रीपंचास्तिकाय–संग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १३।।

अब, इस गाथा में सिद्ध होने की प्रक्रिया कहते हैं –

(हरिगीत)

जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो।
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं।। २०।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्रक्रियाप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १४।।

अब, जीव नित्य होने पर भी मनुष्यादि पर्यायों में संसरण करता है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में।
यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इसतरह।। २१ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्यनित्यत्वेऽपिसंसरणप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १५।।

(गाथा)

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो।। १९ ।।
णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो।। २० ।।
एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।। २१ ।।

अब, पाँच अस्तिकायों को बताते हैं –

(हरिगीत)

जीव–पुद्गल धरम–अधरम गगन अस्तिकाय सब।
अस्तित्वमय हैं अकृत कारणभूत हैं इस लोक के।। २२।।

ॐ ह्रीं पंचास्तिकायस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १६।।

अब, कालद्रव्य का अस्तित्त्व सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

सत्तास्वभावी जीव पुद्गल द्रव्य के परिणमन से।
है सिद्धि जिसकी काल वह कहा जिनवरदेव ने।। २३ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यास्तित्वसाधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १७।।

अब, कालद्रव्य का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

रस–वर्ण पंचरु फरस अठ अर गंध दो से रहित है।
अगुरुलघुक अमूर्त युत अरु काल वर्तन हेतु है।। २४ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १८।।

(गाथा)

जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स।। २२ ।।
सब्भावभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो।। २३ ।।
ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति।। २४ ।।

अब, व्यवहारकाल का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

समय–निमिष–कला–घड़ी दिनरात–मास–ऋतु–अयन।
वर्षादि का व्यवहार जो वह पराश्रित जिनवर कहा।। २५।।
विलम्ब अथवा शीघ्रता का ज्ञान होता माप से।
माप होता पुद्गलाश्रित काल अन्याश्रित कहा।। २६।।

ॐ ह्रीं व्यवहारकालनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १९।।

अब, जीवद्रव्य का विशेष निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

आत्मा है जीव–देह प्रमाण चित्–उपयोगमय।
अमूर्त कर्त्ता–भोक्ता प्रभु कर्म से संयुक्त है।। २७।।

ॐ ह्रीं जीवद्रव्यस्वरूपप्रतिपादक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २०।।

अब, मुक्तजीव का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

कर्म मल से मुक्त आतम मुक्ति कन्या को वरे।
सर्वज्ञता समदर्शिता सह अनन्तसुख अनुभव करे।। २८।।

(गाथा)

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसंवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।। २५।।
णत्थि चिरं वा खिप्पंमत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो।। २६।।
जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता व देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।। २७।।
कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अन्तमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं।। २८।।

आतम स्वयं सर्वज्ञ-समदर्शित्व की प्राप्ति करे।
अर स्वयं अव्याबाध एवं अतीन्द्रिय सुख अनुभवे।। २९।।

ॐ ह्रीं मुक्तजीवस्वरूपप्रतिपादक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २१।।

अब, संसारी जीव का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

श्वास आयु इन्द्रिबलमय प्राण से जीवित रहे।
त्रय लोक में जो जीव वे ही जीव संसारी कहे।। ३० ।।

ॐ ह्रीं संसारीजीवस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२।।

अब, जीव का अगुरुलघुस्वभाव बताते हैं -

(हरिगीत)

अगुरुलघुक स्वभाव से जिय अनन्त गुण मय परिणमें।
जिय के प्रदेश असंख्य पर जिय लोकव्यापी एक है।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य अगुरुलघुस्वभावप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २३।।

(गाथा)

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अन्तमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं ।। २९ ।।
पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ।। ३० ।।
अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
देसेहिं असंखादा सिय लोगं सव्वमावण्णा ।। ३१।।

अब, अनंत जीव संसारी हैं और अनंतजीव मुक्त हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

बन्धादि विरहित सिद्ध आस्रव आदि युत संसारि सब।
संसारि भी होते कभी कुछ व्याप्त पूरे लोक में।। ३२।।

ॐ ह्रीं अनंतजीवसंसारी-अनंतजीवमुक्त-इतिप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४।।

अब, उदाहरणसहित स्वदेहप्रमाण का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

अलप या बहु क्षीर में ज्यों पद्ममणि आकृति गहे।
त्यों लघु-गुरु इस देह में ये जीव आकृतियाँ धरें।। ३३ ।।

ॐ ह्रीं अगुरुलघुस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं नि.।। २५।।

अब, शरीर और आत्मा की भिन्नता को बताते हैं –

(हरिगीत)

दूध-जल वत एक जिय-तन कभी भी ना एक हों।
अध्यवसान विभाव से जिय मलिन हो जग में भ्रमें।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं शरीरात्मभिन्नत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २६।।

(गाथा)

केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा।। ३२ ।।
जह पउमराय रयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि।। ३३ ।।
सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्कक्काय एक्कट्ठी।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं।। ३४ ।।

अब, प्राण द्वारा सिद्ध जीवों का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

जीवित नहीं जड़ प्राण से पर चेतना से जीव हैं।
जो वचन गोचर हैं नहीं वे देह विरहित सिद्ध हैं।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धजीवानांचैतन्यप्राणत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २७।।

अब, सिद्ध भगवान के अकार्यकारणत्व सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

अन्य से उत्पाद नहिं इसलिए सिद्ध न कार्य हैं।
होते नहीं हैं कार्य उनसे अत: कारण भी नहीं।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धजीवानां अकार्यकारणत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २८।।

अब, सिद्धजीव के जीवत्व की सिद्धि करते हैं –

(हरिगीत)

सद्भाव हो न मुक्ति में तो ध्रुव–अध्रुवता ना घटे।
विज्ञान का सद्भाव अर अज्ञान असत कैसे बनें?।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धजीवजीवत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २९।।

(गाथा)

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।। ३५ ।।
ण कुदोचि वि उप्पण्णो तम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि।। ३६ ।।
सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे।। ३७ ।।

अब, विविध चेतन भावों को बताते हैं –

(हरिगीत)

कोई वेदे कर्म फल को, कोई वेदे करम को।
कोई वेदे ज्ञान को निज त्रिविध चेतकभाव से।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं त्रिविधचेतनभावप्रतिपादक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३०।।

अब, चेतनाओं के स्वामी का ज्ञान कराते हैं –

(हरिगीत)

थावर करम फल भोगते, त्रस कर्मफल युत अनुभवें।
प्राणित्व से अतिक्रान्त जिनवर वेदते हैं ज्ञान को।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं त्रिविधचेतनास्वामीनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३१।।

अब,उपयोग का स्वरूप व भेद–प्रभेद समझाते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञान–दर्शन सहित चिन्मय द्विविध है उपयोग यह।
ना भिन्न चेतनतत्व से है चेतना निष्पन्न यह ।। ४०।।
मतिश्रुतावधि अर मनः केवल ज्ञान पाँच प्रकार हैं।
कुमति कुश्रुत विभंग युत अज्ञान तीन प्रकार हैं।। ४१।।

(गाथा)

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण।। ३८ ।।
सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विदंति ते जीवा।। ३९ ।।
उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि।। ४० ।।
आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते।। ४१ ।।

चक्षु-अचक्षु अवधि केवल दर्श चार प्रकार हैं।
निराकार दरश उपयोग में सामान्य का प्रतिभास है।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं उपयोगभेद-प्रभेदनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३२।।

अब, ज्ञान और ज्ञानी का एकत्व और अनेकत्व बताते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञान से नहिं भिन्न ज्ञानी तदपि ज्ञान अनेक हैं।
ज्ञान की ही अनेकता से जीव विश्व स्वरूप है।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानात्मनो एकत्व-अनेकत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३३।।

अब, द्रव्य और गुण का अभिन्नत्व बताते हैं –

(हरिगीत)

द्रव्य गुण से अन्य या गुण अन्य माने द्रव्य से।
तो द्रव्य होंय अनन्त या फिर नाश ठहरे द्रव्य का।। ४४ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-गुणाऽभिन्नत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३४।।

(गाथा)

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ।। ४२ ।।
ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियं त्ति णाणीहि।। ४३ ।।
जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति ।। ४४ ।।

अब, द्रव्य और गुण का अन्यपना-अनन्यपना बताते हैं -

(हरिगीत)

द्रव्य अर गुण वस्तुतः अविभक्तपने अनन्य हैं।
विभक्तपन से अन्यता या अनन्यता नहिं मान्य है।। ४५ ।।
संस्थान संख्या विषय बहुविध द्रव्य के व्यपदेश जो।
वे अन्यता की भाँति ही, अनन्यपन में भी घटे।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-गुणयोरन्यानन्यत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३५।।

अब, उदाहरण के माध्यम से ज्ञानपुरुष को ज्ञानी कहते हैं -

(हरिगीत)

धन सेधनी अरु ज्ञान से ज्ञानी द्विविध व्यपदेश है।
इस भाँति ही पृथकत्व अर एकत्व का व्यपदेश है ।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर ज्ञानात्मनोभेदाभेदत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३६।।

अब, ज्ञान और ज्ञानी के सर्वथा भिन्न होने पर क्या आपत्ति आयेगी, यह बताते हैं - (हरिगीत)

यदि होय अर्थान्तरपना, अन्योन्य ज्ञानी-ज्ञान में।
दोनों अचेतनता लहें, संभव नहीं अत एव यह।। ४८।।

ॐ ह्रीं ज्ञानात्मनोसर्वथाभिन्नत्वेदोषप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३७।।

(गाथा)

अविभत्त मणण्णत्वं दव्व गुणाणं विभत्तमण्णतं।
णेछन्ति णिच्छयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं।। ४५ ।।
ववदेसा संढाणा, संखा विषया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणण्णत्ते, अण्णत्ते चावि विज्जंते ।। ४६ ।।
णाणं धनं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू।। ४७ ।।
णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स।
दोण्डं अचेदणत्वं पसजदि सम्मं जिणावमदम्।। ४८ ।।

अब, आत्मा और ज्ञान में तादात्म्यसम्बन्ध बताते हैं –

(हरिगीत)

पृथक् चेतन ज्ञान से समवाय से ज्ञानी बने।
यह मान्यता नैयायिकी जो युक्तिसंगत है नहीं।। ४९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानतादात्म्यसम्बन्धप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३८।।

अब, द्रव्य और गुण में समवायसम्बन्ध का निषेध करते हैं –

(हरिगीत)

समवर्तिता या अयुतता अप्रथकत्व या समवाय है।
सब एक ही है ह्न सिद्ध इससे अयुतता गुण–द्रव्य में।। ५० ।।

ॐ ह्रीं द्रव्य–गुणसमवायसम्बन्धनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३९।।

अब, अब दृष्टान्त द्वारा जीव और ज्ञानगुण का अन्यत्व और अनन्यत्व बताते हैं – (हरिगीत)

ज्यों वर्ण आदिक बीस गुण परमाणु से अपृथक हैं।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को द्योतित करें।। ५१ ।।
त्यों जीव से संबद्ध दर्शन–ज्ञान जीव अनन्य हैं।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को घोषित करें।। ५२ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर जीव–ज्ञानयोरन्यत्वानन्यत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकाय–संग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४०।।

(गाथा)

णहि सो समवाया दो अत्यंतरिदो दु णाणदो णाणी।
अण्णाणीति य वयणं एगत्त पसाधणं होदि।। ४९ ।।
समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुद सिद्धो य।
तम्हा दव्व गुणा णं, अजुदा सिद्धि ति णिद्दिट्ठा।। ५० ।।
वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति।। ५१ ।।
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो।। ५२ ।।

अब, औपशमिकादि भावों के माध्यम से जीव का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

है अनादि–अनन्त आतम पारिणामिक भाव से।
सादि–सान्त के भेद पड़ते उदय मिश्र विभाव से।। ५३ ।।

ॐ ह्रीं औपशमिकादिभावमाध्यमेन जीवस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४१।।

अब, उत्पाद–व्यय में अविरोध प्रदर्शित करते हैं –

(हरिगीत)

इस भाँति सत–व्यय अर असत उत्पाद होता जीव के।
लगता विरोधाभास सा पर वस्तुतः अविरुद्ध है।। ५४ ।।
तिर्यंच नारक देव मानुष नाम की जो प्रकृति हैं।
सद्भाव का कर नाश वे ही असत् का उद्भव करें।। ५५ ।।

ॐ ह्रीं सदुच्छेद–असदुत्पादेऽपिअविरुद्धत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४२।।

अब, जीव के पाँच भावों को बताते हैं –

(हरिगीत)

उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक भाव जो।
संक्षेप में ये पाँच हैं विस्तार से बहुविध कहे।। ५६।।

ॐ ह्रीं जीवस्यपंचभावनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४३।।

(गाथा)

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो।
सब्भावदो अणंता, पंचग्गुणप्पधाणा य।। ५३ ।।
एवं सदो विणासो असदो जीवस्स हवदि उप्पादो।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं।। ५४ ।।
णेरइयतिरियमणुया देवा इदि णामसंजुदा पयडी।
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं।। ५५ ।।
उदयेण उवसमेण य खएण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामें।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा।। ५६ ।।

अब, जीव का कर्तृत्व बताते हैं –

(हरिगीत)

पुद्गल करम को वेदते आतम करे जिस भाव को।
उस भाव का वह जीव कर्ता कहा जिनवर देव ने।। ५७ ।।

ॐ ह्रीं जीवकर्तृत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४४।।

अब, उदयादि भाव कर्मकृत हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

पुद्गलकरम विन जीव के उदयादि भाव होते नहीं।
इससे करम कृत कहा उनको वे जीव के निजभाव हैं।। ५८ ।।

ॐ ह्रीं उदयादिभावकर्मकृतनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४५।।

अब, आत्मा अपने भावों का कर्त्ता है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

यदि कर्मकृत हैं जीव भाव तो कर्म ठहरे जीव कृत।
पर जीव तो कर्त्ता नहीं निज छोड़ किसी पर भाव का।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः भावकर्मकर्तृत्वनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४६।।

(गाथा)

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तस्स तेण कत्ता हवदि त्ति य सासणे पढिदं।। ५७ ।।
कम्मेण बिणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं।। ५८ ।।
भावो जदि कम्म कदो, अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि, मुत्ता अण्णं सगं भावं।। ५९ ।।

अब, द्रव्यकर्म और भावकर्म में परस्पर निमित्तपने का ज्ञान कराते हैं –

(हरिगीत)

कर्मनिमित्तिक भाव होते अर कर्म भावनिमित्त से।
अन्योन्य नहि कर्ता तदपि, कर्ता बिना नहिं कर्म है।। ६० ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यकर्म-भावकर्मपरस्परनिमित्तत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४७।।

अब, आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता नहीं है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

निजभाव परिणत आत्मा कर्ता स्वयं के भाव का।
कर्ता न पुद्गल कर्म का यह कथन है जिनदेव का।। ६१ ।।

ॐ ह्रीं पुद्गलकर्माकृर्त्तत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४८।।

अब, कर्म और जीव अपने-अपने स्वभाव के कर्त्ता हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

कार्मण अणु निज कारकों से करम पर्यय परिणमें।
जीव भी निज कारकों से विभाव पर्यय परिणमें।। ६२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मकर्मणोस्व-स्वभावकतृत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४९।।

(गाथा)

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।। ६० ।।
कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेदव्वं।। ६१ ।।
कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण।। ६२ ।।

अब, यहाँ प्रश्न पूर्वक समाधान करते हैं कि कर्म का फल जीव क्यों भोगे?

(हरिगीत)

यदि करम करते करम को आतम करे निज आत्म को।
क्यों करम फल दे जीव को क्यों जीव भोगे करम फल।। ६३ ।।
करम पुद्गल वर्गणायें अनन्त विविध प्रकार कीं।
अवगाढ़-गाढ़-प्रगाढ़ हैं सर्वत्र व्यापक लोक में।। ६४ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनःभावकर्मकर्तृत्वसाधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५०।।

अब, कर्मबन्ध का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

आतम करे क्रोधादि तब पुद्गल अणु निजभाव से।
करमत्व परिणत होंय अर अन्योन्य अवगाहन करें।। ६५ ।।

ॐ ह्रीं कर्मबन्धस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५१।।

अब, कर्मविचित्रता अन्य द्वारा नहीं की जाती, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

ज्यों स्कन्ध रचना पुद्गलों की अन्य से होती नहीं।
त्यों करम की भी विविधता परकृत कभी होती नहीं।। ६६ ।।

ॐ ह्रीं कर्मविचित्रता अन्यद्रव्यकृतनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५२।।

(गाथा)

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।। ६३ ।।
ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं।। ६४ ।।
अत्ता कुणदि सभावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं।
गच्छंति कम्मभावं अण्णण्णोगाहमवगाढा।। ६५ ।।
जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती।
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि।। ६६ ।।

अब, आत्मा के भोक्तृत्व की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

पर, जीव अर पुद्गलकरम पय-नीरवत प्रतिबद्ध हैं।
करम फल देते उदय में जीव सुख-दुख भोगते।। ६७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनःभोक्तृत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५३।।

अब, आत्मा का कर्तृत्व और भोक्तृत्व विषय का उपसंहार करते हैं –

(हरिगीत)

चेतन करम युत है अत: करता-करम व्यवहार से।
जीव भोगे करमफल नित चैत्य-चेतक भाव से।। ६८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः कर्तृत्व भोक्तृत्व-उपसंहारक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५४।।

अब, यह आत्मा अपने मोह के कारण संसार परिभ्रमण कर रहा है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

इसतरह कर्मों की अपेक्षा जीव को कर्ता कहा।
पर, जीव मोहाच्छन्न हो भ्रमता फिरै संसार में।। ६९ ।।

ॐ ह्रीं संसारपरिभ्रमणकारणमोहप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५५।।

(गाथा)

जीवा पोग्गलकाया अण्णण्णोगाढगहणपडिबद्धा।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं देंति भुञ्जन्ति।। ६७ ।।
तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स।
भोत्ता हु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं।। ६८ ।।
एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो।। ६९ ।।

अब, सम्यग्दृष्टि जीव शीघ्र निर्वाण को प्राप्त होंगे, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जिन वचन से पथ प्राप्त कर उपशान्त मोही जो बने।
शिवमार्ग का अनुसरण कर वे धीर शिवपुर को लहें।। ७० ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टिशीघ्रनिर्वाणप्राप्तिनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५६।।

अब, विविध अपेक्षाओं से आत्मा के भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

आतम कहा चैतन्य से इक ज्ञान-दर्शन से द्विविध।
उत्पाद-व्यय-ध्रुव से त्रिविध अर चेतना से भी त्रिविध।। ७१ ।।
चतुपंच षट् व सप्त आदिक भेद दसविध जो कहे।
वे सभी कर्मों की अपेक्षा जिय के भेद जिनवर ने कहे।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं विविधऽपेक्षायां आत्मनःभेदनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५७।।

अब, मुक्त जीवों के उर्ध्वगमन का व्याख्यान करते हैं –

(हरिगीत)

प्रकृति थिति अनुभाग बन्ध प्रदेश से जो मुक्त हैं।
वे उर्द्धगमन स्वभाव से हैं प्राप्त करते सिद्धपद।। ७३ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तजीवउर्ध्वगमनस्वभावनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५८।।

(गाथा)

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो।। ७० ।।
एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो होदि।
चदुचंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पधाणो य।। ७१ ।।
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभंगसब्भावो।
अट्ठासओ णवट्ठो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो।। ७२ ।।
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति।। ७३ ।।

अब, पुद्गलास्तिकाय के स्वरूप व भेदों का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

स्कन्ध उनके देश अर परदेश परमाणु कहे।
पुद्गलकाय के ये भेद चतु यह कहा जिनवर देव ने।। ७४ ।।

ॐ ह्रीं पुद्गलास्तिकायभेदनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५९।।

अब, पुद्गल के भेद-प्रभेदों का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

स्कन्ध पुद्गलपिंड है अर अर्द्ध उसका देश है।
अर्धार्द्ध को कहते प्रदेश अविभागी अणु परमाणु है।। ७५ ।।
सूक्ष्म-बादर परिणमित स्कन्ध को पुद्गल कहा।
स्कन्ध के षटभेद से त्रैलोक्य यह निष्पन्न है ।। ७६।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यभेद-प्रभेदप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६०।।

अब, परमाणु का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

स्कन्ध का वह निर्विभागी अंश परमाणु कहा।
वह एक शाश्वत मूर्तिभव अर अविभागी अशब्द है।। ७७ ।।

(गाथा)

खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू।
इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा।। ७४ ।।
खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति।
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी।। ७५ ।।
बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पोग्गलो त्ति ववहारो।
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं।। ७६ ।।
सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो।। ७७ ।।

कथनमात्र से मूर्त है अर धातु चार का हेतु है।
परिणामी तथा अशब्द जो परमाणु है उसको कहा।। ७८ ।।

ॐ ह्रीं परमाणुस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६१।।

अब, स्कन्ध का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

स्कन्धों के टकराव से शब्द उपजें नियम से।
शब्द स्कन्धोत्पन्न है अर स्कन्ध अणु संघात है।। ७९ ।।

ॐ ह्रीं स्कन्धस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६२।।

अब, परमाणु के प्रदेश बताते हैं –

(हरिगीत)

अवकाश नहिं सावकाश नहिं अणु अप्रेशी नित्य है।
भेदक-संघातक स्कन्ध का अर विभाग कर्ता काल का।। ८०।।

ॐ ह्रीं परमाणुप्रदेशनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६३।।

(गाथा)

आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।
सो णेओ परमाणु परिणामगुणो सयमसद्दो।। ७८ ।।
सद्दो खंधप्पभवो, खंधो परमाणुसंगसंघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिगो णियदो।। ७९ ।।
णिच्चो णाणवगासो ण सावगासो पदेसदो भेदा।
खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं।। ८० ।।

अब, परमाणु गुण-पर्यायवाला है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

एक वरण-रस गंध युत अर दो स्पर्श युत परमाणु है।
वह शब्द हेतु अशब्द है, स्कन्ध में भी द्रव्याणु है।। ८१।।

ॐ ह्रीं गुणपर्यायवानपरमाणुनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६४।।

अब, पुद्गलद्रव्य का उपसंहार करते हैं -

(हरिगीत)

जो इन्द्रियों से भोग्य हैं अर काय-मन के कर्म जो।
अर अन्य जो कुछ मूर्त हैं वे सभी पुद्गल द्रव्य हैं।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं पुद्गलभेदोपसंहारक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६५।।

अब, धर्मास्तिकाय का वर्णन करते हैं -

(हरिगीत)

धर्मास्तिकाय अवर्ण अरस अगंध अशब्द अस्पर्श है।
लोकव्यापक पृथुल अर अखण्ड असंख्य प्रदेश है।। ८३ ।।
अगुरुलघु अंशों से परिणत उत्पाद-व्यय-ध्रुव नित्य है।
क्रिया गति में हेतु है वह पर स्वयं ही अकार्य है।। ८४ ।।

(गाथा)

एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि।। ८१ ।।
उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदियकाया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पोग्गलं जाणे।। ८२ ।।
धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमफ्फासं।
लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं।। ८३ ।।
अगुरुलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं।
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूद सयमकज्जं।। ८४ ।।

गमन हेतुभूत है ज्यों जगत में जल मीन को।
त्यों धर्म द्रव्य है गमन हेतु जीव पुद्गल द्रव्य को।। ८५ ।।

ॐ ह्रीं धर्मास्तिकायनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६६।।

अब, अधर्मास्तिकाय का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

धरम नामक द्रव्यवत ही अधर्म नामक द्रव्य है।
स्थिति क्रिया से युक्त को यह स्थितिकरण में निमित्त है।। ८६ ।।

ॐ ह्रीं अधर्मास्तिकायप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६७।।

अब, धर्म-अधर्मद्रव्य का अस्तित्व बताते हैं –

(हरिगीत)

धरम अर अधरम से ही लोकालोक गति-स्थिति बने।
वे उभय भिन्न-अभिन्न भी अर सकल लोक प्रमाण है।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं धर्माधर्मद्रव्यास्तित्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६८।।

अब, धर्म-अधर्मद्रव्य उदासीन निमित्त हैं, ऐसा बताते हैं –

(हरिगीत)

होती गति जिस द्रव्य की स्थिति भी हो उसी की।
वे सभी निज परिणाम से ठहरें या गति क्रिया करें।। ८८ ।।

(गाथा)

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए।
तह जीवपोग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणाहि।। ८५ ।।
जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव।। ८६ ।।
जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य।। ८७ ।।
ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गदिस्स य पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च।। ८८ ।।

जिनका होता गमन है होता उन्हीं का ठहरना।
तो सिद्ध होता है कि द्रव्य चलते-ठहरते स्वयं से।। ८९ ।।

ॐ ह्रीं उदासीननिमित्तधर्माधर्मद्रव्यनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६९।।

अब, आकाशद्रव्यास्तिकाय का निरूपक करते हैं -

(हरिगीत)

जीव पुद्गल धरम आदिक लोक में जो द्रव्य हैं।
अवकाश देता इन्हें जो आकाश नामक द्रव्य वह।। ९० ।।
जीव पुद्गल काय धर्म अधर्म लोक अनन्य हैं।
अन्त रहित आकाश इनसे अनन्य भी अर अन्य भी।। ९१ ।।

ॐ ह्रीं आकाशद्रव्यनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७०।।

अब, विस्तार से आकाश गति और स्थिति का हेतु नहीं है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

अवकाश हेतु नभ यदि गति-थिति कारण भी बने।
तो ऊर्ध्वगामी आत्मा लोकान्त में जा क्यों रुके।। ९२ ।।

(गाथा)

विज्जदि जेसिं गमणं ठाण पुण तेसिमेव संभवदि।
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति।। ८९ ।।
सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च।
जं देदि विवरमखिलं तं लोगे हवदि आगासं।। ९० ।।
जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदो णण्णा।
तत्ते अणण्णमण्णं आयासं अन्तवदिरित्तं।। ९१ ।।
आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठन्ति किध तत्थ।। ९२ ।।

लोकान्त में तो रहे आत्मा अष्ट कर्म अभाव कर।
तो सिद्ध है कि नभ गति-थिति हेतु होता है नहीं।। ९३ ।।

नभ होय यदि गति हेतु अर थिति हेतु पुद्गल जीव को।
तो हानि होय अलोक की अर लोक अन्त नहीं बने।। ९४ ।।

इसलिए गति थिति निमित्त आकाश हो सकता नहीं।
जगत के जिज्ञासुओं को यह कहा जिनदेव ने।। ९५।।

धर्माधर्म अर लोक का अवगाह से एकत्व है।
अर पृथक् पृथक् अस्तित्व से अन्यत्व है भिन्नत्व है।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं आकाशस्य गति-स्थितिनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७१।।

अब, द्रव्यों को मूर्त्त-अमूर्त्तरूप से विभक्त करते हैं -

(हरिगीत)

जीव अर आकाश धर्म अधर्म काल अमूर्त है।
मूर्त पुद्गल जीव चेतन शेष द्रव्य अजीव हैं।। ९७ ।।

ॐ ह्रीं मूर्त्तामूर्त्तरूपद्रव्यविभाजनप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७२।।

(गाथा)

जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थि त्ति।। ९३ ।।
जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं।
पसजदि अलोगहाणी, लोगस्स य अन्तपरिवुड्ढी।। ९४ ।।
तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं।
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं।। ९५ ।।
धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा।
पुधगुवलद्धिविसेसा करेंति एगत्तमण्णत्तं।। ९६ ।।
आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु।। ९७ ।।

अब, द्रव्यों को सक्रियता और निष्क्रियता के रूप में विभक्त करते हैं –

(हरिगीत)

सक्रिय करण–सह जीव–पुद्गल शेष निष्क्रिय द्रव्य हैं।
काल पुद्गल का करण पुद्गल करण है जीव का।। ९८ ।।

ॐ ह्रीं सक्रिय–निष्क्रियरूपद्रव्यविभाजननिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७३।।

अब, मूर्त्त–अमूर्त्त का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

हैं जीव के जो विषय इन्द्रिय ग्राह्य वे सब मूर्त हैं।
शेष सब अमूर्त हैं मन जानता है उभय को।। ९९ ।।

ॐ ह्रीं मूर्तामूर्त्तस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७४।।

अब, कालद्रव्य का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

क्षणिक है व्यवहार काल अरु नित्य निश्चय काल है।
परिणाम से हो काल उद्भव काल से परिणाम भी।। १०० ।।
काल संज्ञा सत प्ररूपक नित्य निश्चय काल है।
उत्पन्न–ध्वंसी सतत रह व्यवहार काल अनित्य है।। १०१ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७५।।

(गाथा)

जीवा पोग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।
पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु।। ९८ ।।
जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं होंति ते मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि।। ९९ ।।
कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो।। १०० ।।
कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई।। १०१ ।।

अब, कालद्रव्य के कायत्व का निषेध करते हैं –

(हरिगीत)

जीव पुद्गल धर्म–अधर्म काल अर आकाश जो।
हैं 'द्रव्य संज्ञा सर्व की कायत्व है नहिं काल को।। १०२ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यकायत्वनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७६।।

अब, प्रवचनसार पंचास्तिकाय को जानने का फल बताते हैं –

(हरिगीत)

इस भाँति जिनध्वनिरूप पंचास्ति प्रयोजन जानकर।
जो जीव छोड़े राग–रुष वह छूटता भव दुःख से।। १०३ ।।

ॐ ह्रीं प्रवचनसारपंचास्तिकायज्ञानफलनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७७।।

अब, दुःख से मुक्त होने का उपाय बताते हैं –

(हरिगीत)

इस शास्त्र के सारांश रूप शुद्धात्मा को जानकर।
उसका करे जो अनुसरण, वह शीघ्र मुक्ति वधु वरे।। १०४ ।।

ॐ ह्रीं दुःखमुक्त्योपायनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७८।।

(गाथा)

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं।। १०२ ।।
एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं।। १०३ ।।
मुणिऊण एतदट्ठं तदगमणुज्जदो णिहदमोहो।
पसमिय रागद्दोसो हवदि हद परापरो जीवो।। १०४ ।।

जयमाला

(रेखता)

सभी द्रव्यों में होता नित्य उत्पाद-नाश अर ध्रौव्य।
सभी गुण पर्यायों से सहित इसी को कहते हैं अस्तित्व।।
गुण-पर्यय से अस्तित्व प्रदेशों से होता कायत्व।
अतः जिनमें हो बहुत प्रदेश उन्हें कहते अस्तिकायत्व।। १ ।।

काल का है यद्यपि अस्तित्व किन्तु उसका है एक प्रदेश।
अतः वह यद्यपि होता द्रव्य किन्तु न हो वह अस्तिकाय।।
अस्तित्व और कायत्व अरे जिनमें हों दोनों साथ।
उन्हें कहते हैं अस्तिकाय काल न होवे अस्तिकाय।। २ ।।

जीव पुद्गल नभ धर्म-अधर्म अरे ये पाँचों अस्तिकाय।
इन्हीं का है विस्तृत व्याख्यान यही इसका पहला अध्याय।।
द्रव्य का लक्षण है अस्तित्व उसे सत् भी कहते सर्वज्ञ।
अरे उत्पाद् नाश अर ध्रौव्य सहित होता है वह अस्तित्व।। ३ ।।

द्रव्य में होते गुण-पर्याय यही है द्रव्यों का द्रव्यत्व।
द्रव्य के लक्षण में जिनदेव नहीं शामिल करते कायत्व।।
यदि शामिल करते कायत्व काल को कैसे कहते द्रव्य?।
काल का है यद्यपि अस्तित्व नहीं होता उसमें कायत्व।। ४ ।।

द्रव्य से रहित नहीं पर्याय और पर्याय रहित नहीं द्रव्य।
द्रव्य से रहित नहीं गुण और गुणों से रहित नहीं है द्रव्य।।
द्रव्य-गुण और द्रव्य-पर्याय नहीं होते हैं कभी भिन-भिन्न।
एक ही वस्तु के हैं रूप सभी होते हैं सदा अनन्य।। ५ ।।

(हरिगीत)

जिनके प्रदेश अनन्य हैं वे सभी एक-अनन्य हैं।
भिन-भिन्न हों परदेश जिनके वे सभी भिन-भिन्न हैं।।
रे प्रदेशों की भिन्नता ही भिन्नता का रूप है।
रे प्रदेशों की एकता ही एकता का रूप है।। ६ ।।

जो क्षेत्र से क्षेत्रान्तर की क्रिया से सम्पन्न हैं।
वे जीव-पुद्गल द्रव्य ही बस मात्र सक्रिय द्रव्य हैं।।
जो इन्द्रियों से ज्ञात हो वह एक पुद्गल मूर्तिक।
शेष पाँचों द्रव्य ही हैं एकमात्र अमूर्तिक।। ७ ।।

जिनदेव श्री के प्रवचनों का सार ही यह ग्रन्थ है।
इसमें बताये तत्त्व को ही जानना शिवपंथ है।।
यह जानकर जो छोड़ता है मोह-राग अरु द्वेष को।
संसार सागर पार कर वह प्राप्त करता मोक्ष को।। ८ ।।

इसमें बताये तत्त्व को निज आतमा को जानना।
उस एक को बस उसे ही निजरूप में पहिचानना।।
उस एक में ही लीन हो तल्लीन हो उस एक में।
उस एक में ही जमा रहना रमा रहना एक में।। ९ ।।

उस एक के ही ज्ञान में उस एक के ही ध्यान में।
सब विकल्पों से पार केवल निर्विकल्पक ध्यान में।।
हो गया एकाकार बस निज आतमा के ध्यान में।
और कुछ भी नहीं जिसके ज्ञान में श्रद्धान में।। १०।।

बस आतमा ही बस रहा जिसके विमल श्रद्धान में।
बस आतमा ही एक है जिसके अलौकिक ध्यान में।।
ज्ञान में श्रद्धान में बस निर्विकल्पक ध्यान में।
वह आतमा कुछ क्षणों में ही क्यों न हो निर्वाण में?।। ११ ।।

(दोहा)

आत्मज्ञान ही मार्ग है आत्मध्यान ही मार्ग।
आतम का श्रद्धान ही एकमात्र सन्मार्ग।। १२ ।।
अपने में ही मस्त जो ज्ञान-ध्यान लवलीन।
उसके भव ज्यादह नहीं दो होंगे या तीन।। १३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रथम श्रुतस्कंधपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं नि... ।

३

पंचास्तिकायसंग्रह
द्वितीय श्रुतस्कन्ध पूजन

स्थापना

(रोला)

पंचास्तिकाय संग्रह की इस तीजी पूजा में।
दूजे थल[१] की पूजन करते भक्ति भाव से।।
इसमें सबसे पहले रत्नत्रय समझाते।
सम्यक् रत्नत्रय का सम्यक् रूप बताते।। १ ।।

अपने में अपनापन निश्चय सम्यग्दर्शन।
तत्त्वों का श्रद्धान कहा जाता है सम्यक्।।
रत्नत्रय के साथ अरे नव तत्त्वार्थों को।
समझाते हैं अरे विविध विध विविध नयों से।। २ ।।

(दोहा)

इसप्रकार इस कंध में रत्नत्रय का रूप।
समझाया है युक्ति से नव तत्त्वार्थ स्वरूप।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कन्धजिनागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

---

१. स्कन्ध

(रोला)

जल

है क्रोधाग्नि बुझानेवाला रत्नत्रय जल।
रत्नत्रय जल अरे कर्मरज धोनेवाला।।
रत्नत्रय धारण कर भवजल पार हो गये।
हम नमते हैं चरण कमल में उन भव्यों के।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

गर्मी का आताप मिटानेवाला चन्दन।
रत्नत्रय भवताप मिटानेवाला चन्दन।।
मुक्तिमार्ग में चलनेवाले साधकगण का।
हम करते हैं बार-बार शत-शत अभिनन्दन।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अक्षत सा अक्षत आतम ही परमातम है।
अक्षत अर्पण कर अक्षत पद का अभिलाषी।।
आतम के आश्रय से अक्षत पद मिलता है।
मैं तो केवल हूँ अक्षत पद का प्रत्याशी।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

जहाँ पुष्प खिलते हैं फल भी पैदा होते।
मुक्तिमार्ग के पुष्प खिलें तो मुक्ति मिले ही।।
सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जो रत्नत्रयधारी।
उनको तो अवश्य मुक्तिफल मिले मिले ही।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

पकवानों के सेवन से तो निश्चित जानो।
चाहे दिनभर को ही सही पर भूख मिटेगी।।
पर आतम के अनुभव से जमने–रमने से।
क्षुधा रोग का है अभाव स्थाई रूप से।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

तम नाशक दीपक से चाहे सीमित जग का।
अंधकार तो मिटता ही है निश्चित जानो।।
केवलज्ञान प्रदीप जले तो सारे जग का।
अंधकार मिटता है यह भी निश्चित मानो।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

अरे धूप से वातावरण शुद्ध होता है।
मार्ग शुद्ध होता है निज के ज्ञान–ध्यान से।।
मुक्तिमार्ग में चलने वाले भव्यजनों का।
निज में जमना–रमना ही तो मुक्तिमार्ग है।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

पुण्य–पाप का फल तो है संसार भ्रमण ही।
वीतराग परिणाम फलें मुक्ति मारग में।।
ये लौकिक फल अरे समर्पण करता हूँ मैं।
अर चलता हूँ शुद्धभाव के मुक्ति मग में।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

बेशकीमती अर उपयोगी सभी वस्तुयें।
जो जीवन को सहज बनाती हैं इस जग में।।
वे ही हैं बस अर्घ्य समर्पण करके उनको।
मैं अनर्घ्यपद चाहूँ चलकर मुक्तिमग में।।
निश्चय रत्नत्रय ही सम्यक् मोक्षमार्ग है।
अपने में अपनापन ही है सम्यग्दर्शन।।
तत्त्वार्थों का रूप समझना अति आवश्यक।
तत्त्वारथ श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहद्वितीयश्रुतस्कंधजिनागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

अब, मंगलाचरण में श्रीमहावीर भगवान को नमस्कार करते हैं –

(हरिगीत)

मुक्तिपद के हेतु से शिरसा नमू महावीर को।
पदार्थ के व्याख्यान से प्रस्तुत करूँ शिवमार्ग को।। १०५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनायनमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७९ ।।

अब, मोक्षमार्ग का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्त्व ज्ञान समेत चारित राग–द्वेष विहीन जो।
मुक्ति का मारग कहा भवि जीव हित जिनदेव ने।।१०६।।

(गाथा)

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं।
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि।। १०५ ।।
सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं।। १०६ ।।

नव पदों के श्रद्धान को समकित कहा जिनदेव ने।
वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान अर समभाव ही चारित्र है ।।१०७ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८०।।

अब, नौ पदार्थों का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

फल जीव और अजीव तद्गत पुण्य एवं पाप हैं।
आसरव संवर निर्जरा अर बन्ध मोक्ष पदार्थ हैं।। १०८ ।।

ॐ ह्रीं नवपदार्थनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८१।।

अब, जीव के भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

संसारी अर सिद्धात्मा उपयोग लक्षण द्विविध।
जग जीव वर्ते देह में अर सिद्ध देहातीत है।। १०९ ।।

ॐ ह्रीं जीवभेदनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८२।।

(गाथा)

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।
चारित्तं समभावो विसएसु विरूढमग्गाणं।। १०७ ।।
जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं।
संवरणं णिज्जरणं बंधो मोक्खो य ते अट्ठा।। १०८ ।।
जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा।
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा।। १०९ ।।

अब, संसारी जीवों में स्थावर जीव का स्वरूप व भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

भू जल अनल वायु वनस्पति काय जीव सहित कहे।
बहु संख्य पर यति मोहयुत स्पर्श ही देती रहें।। ११०।।

उनमें त्रय स्थावर तनु त्रस जीव अग्नि वायु युत।
ये सभी मन से रहित हैं अर एक स्पर्शन सहित हैं।। १११ ।।

ये पृथ्वी कायिक आदि जीव निकाय पाँच प्रकार के।
सभी मन परिणाम विरहित जीव एकेन्द्रिय कहे।। ११२ ।।

अण्डस्थ अर गर्भस्थ प्राणी ज्ञान शून्य अचेत ज्यों।
पंचविध एकेन्द्रि प्राणी ज्ञान शून्य अचेत त्यों।। ११३ ।।

ॐ ह्रीं स्थावरसंसारीजीवप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८३।।

अब, त्रस जीवों के स्वरूप व भेद का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

लट केंचुआ अर शंख शीपी आदि जिय पग रहित हैं।
वे जानते रस स्पर्श को इसलिये दो इन्द्रि कहे।। ११४ ।।

(गाथा)

पुढवी य उदगमगणी वाउ वणाप्फदि जीवसंसिदा काया।
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं।। ११० ।।
ति त्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया।। १११ ।।
एदे जीवणिकाया पंचविधा पुढ़विकायियादीया।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया।। ११२ ।।
अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारसिया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया।। ११३ ।।
संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी।
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा।। ११४ ।।

चींटि-मकड़ी-लीख-खटमल बिच्छु आदिक जंतु जो।
फरस रस अरु गंध जाने तीन इन्द्रिय जीव वे।। ११५ ।।

मधुमक्खी भ्रमर पतंग आदि डांस मच्छर जीव जो।
वे जानते हैं रूप को भी अतः चौइन्द्रिय कहें।। ११६ ।।

भू-जल-गगनचर सहित जो सैनी-असैनी जीव हैं।
सुर-नर-नरक तिर्यंचगण ये पंच इन्द्रिय जीव हैं।। ११७ ।।

नर कर्मभूमिज भोग भूमिज, देव चार प्रकार हैं।
तिर्यंच बहुविध कहे जिनवर, नरक सात प्रकार हैं।। ११८।।

ॐ ह्रीं त्रसरूपसंसारीजीवनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८४।।

अब, नवीनगति प्राप्ति होने का कारण बताते हैं -

(हरिगीत)

गति आयु जो पूरव बंधे जब क्षीणता को प्राप्त हों।
अन्य गति को प्राप्त होता जीव लेश्या वश अहो।। ११९ ।।

ॐ ह्रीं नवीनगतिप्राप्तिकारणनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८५।।

(गाथा)

जूगागुं भीमक्कणपिपीलिया विच्छुयादिया कीडा।
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा।। ११५ ।।
उद्दंसमसयमक्खियमधुकरिभमरा पयंगमादीया।
रूवं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति।। ११६ ।।
सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू।
जलचरथलचरखचरा बलिया पंचेंदिया जीवा।। ११७ ।।
देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढ़विभेयगदा।। ११८ ।।
खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे य ते वि खलु।
पाउण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा।। ११९ ।।

अब, संसारी जीवों के भव्य-अभव्य ये दो भेद बताते हैं -

(हरिगीत)

पूर्वोक्ति जीव निकाय देहाश्रित कहे जिनदेव ने।
देह विरहित सिद्ध हैं संसारी भव्य-अभव्य हैं।। १२०।।

ॐ ह्रीं भव्याभव्यरूपसंसारीभेदनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८६।।

अब, व्यवहारजीवत्व का निषेध करते हैं -

(हरिगीत)

ये इन्द्रियाँ नहिं जीव हैं षट्काय भी चेतन नहीं।
है मध्य इनके चेतना वह जीव निश्चय जानना।। १२१।।

ॐ ह्रीं व्यवहारजीवत्वनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८७।।

अब, जीव का लक्षण बताते हैं -

(हरिगीत)

जिय जानता अर देखता, सुख चाहता दुःख से डरे।
भाव करता शुभ-अशुभ फल भोगता उनका अरे।। १२२ ।।

ॐ ह्रीं जीवलक्षणनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८८।।

(गाथा)

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा।
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य।। १२० ।।
ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता।
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवेंति।। १२१ ।।
जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं बिभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुजंदि जीवो फलं तेसिं।। १२२ ।।

अब, अजीव को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

पूर्वोक्त अनेक प्रकार से इसतरह जाना जीव को।
जानो अजीव पदार्थ अब जड़ चिन्ह की पहचान से।। १२३ ।।

ॐ ह्रीं अजीवज्ञानप्रेरक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८९।।

अब, अजीवद्रव्य का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

जीव के गुण हैं नहीं जड़ पुद्गलादि पदार्थ में।
उनमें अचेतनता कही चेतनपना है जीव में।। १२४।।
सुख-दुःख का वेदन नही, हित-अहित में उद्यम नही।
ऐसे पदार्थ अजीव है, कहते श्रमण उसको सदा।। १२५ ।।

ॐ ह्रीं अजीवद्रव्यप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९०।।

अब, जीव और पुद्गल के संयोग से उत्पन्न संस्थान और संहननादि जड़ हैं, यह बताते हैं – (हरिगीत)

संस्थान अर संघात रस-गँध-वरण शब्द स्पर्श जो।
वे सभी पुद्गल दशा में पुद्गल दरव निष्पन्न हैं।। १२६।।

ॐ ह्रीं संस्थान-संहननजडत्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९१।।

(गाथा)

एवमभिगम्म जीवं अण्णोहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं।
अभिगच्छदु अज्जीवं णणंतरिदेहिं लिंगेहिं।। १२३ ।।
आगासकालपोग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा।। १२४ ।।
सुह्रदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा बेंति अज्जीवं।। १२५ ।।
संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू।। १२६ ।।

अब, आत्मा का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

चेतना गुण युक्त आतम अशब्द अरस अगंध है।
है अनिर्दिष्ट अव्यक्त वह, जानो अलिंगग्रहण उसे।। १२७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९२।।

अब, रागादिपरिणामों का फल बताते हैं –

(हरिगीत)

संसार तिष्ठें जीव जो रागादि युत होते रहें।
रागादि से हो कर्म आस्रव करम से गति-गमन हो।। १२८ ।।

गति में सदा हो प्राप्त तन-तन इन्द्रियों से सहित हो।
इन्द्रियों से विषयग्रहण अर विषय से फिर राग हो।। १२९ ।।

रागादि से भवचक्र में प्राणी सदा भ्रमते रहें।
हैं अनादि अनन्त अथवा, सनिधन जिनवर कहे।। १३० ।।

ॐ ह्रीं रागादिपरिणामफलप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९३।।

(गाथा)

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।। १२७ ।।
जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी।। १२८ ।।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु बिसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।। १२९ ।।
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो।। १३० ।।

अब, पुण्य-पाप का वर्णन करते हैं -

(हरिगीत)

मोह राग अर द्वेष अथवा हर्ष जिसके चित्त में।
इस जीव के शुभ या अशुभ परिणाम का सद्भाव है।। १३१ ।।

शुभभाव जिय के पुण्य हैं अर अशुभ परिणति पाप हैं।
उनके निमित से पौद्गलिक परमाणु कर्मपना धरें।। १३२ ।।

ॐ ह्रीं पुण्य-पापनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९४।।

अब, कर्म का मूर्तिकत्व सिद्ध करते हैं -

(हरिगीत)

जो कर्म का फल विषय है, वह इन्द्रियों से भोग्य हैं।
इन्द्रिय विषय हैं मूर्त इससे करम फल भी मूर्त है।। १३३ ।।

ॐ ह्रीं कर्मणःमूर्तत्वप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९५।।

अब, जीव और कर्म परस्पर एक-दूसरे को अवगाह देते हैं, यह बताते हैं - (हरिगीत)

मूर्त का स्पर्श मूरत, मूर्त बँधते मूर्त से।
आत्मा अमूरत करम मूरत, अन्योन्य अवगाहन लहें।। १३४ ।।

ॐ ह्रीं जीवकर्मपरस्परावगाहनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९६।।

(गाथा)

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो।। १३१ ।।
सुहपरिणामों पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पतो।। १३२ ।।
जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि।। १३३ ।।
मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि।। १३४ ।।

अब, पुण्यास्रव का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

हो रागभाव प्रशस्त अर अनुकम्प हिय में है जिसे।
मन में नहीं हो कलुषता नित पुण्य आस्रव हो उसे।। १३५ ।।

ॐ ह्रीं पुण्यास्रवप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९७।।

अब, प्रशस्त राग का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

अरहंत सिद्ध अर साधु भक्ति गुरु प्रति अनुगमन जो।
वह राग कहलाता प्रशस्त जँह धरम का आचरण हो।। १३६ ।।

ॐ ह्रीं प्रशस्तरागप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९८।।

अब, करुणा के स्वरूप का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

क्षुधा तृषा से दुःखीजन को व्यथित होता देखकर।
जो दुःख मन में उपजता करुणा कहा उस दुःख को।। १३७ ।।

ॐ ह्रीं करुणास्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९९।।

(गाथा)

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि।। १३५ ।।
अरहंतसिद्धसाहूसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति।। १३६ ।।
तिसिदं व भुक्खिवदं वा दुहिदं दट्ठुण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा।। १३७ ।।

अब, कलुषता का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

अभिमान माया लोभ अर क्रोधादि भय परिणाम जो।
सब कलुषता के भाव ये हैं क्षुभित करते जीव को।। १३८ ।।

ॐ ह्रीं कलुषतानिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १००।।

अब, पापास्रव का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

प्रमादयुतचर्या कलुषता, विषयलोलुप परिणति।
परिताप अर अपवाद पर का पाप आस्रव हेतु हैं।। १३९ ।।
चार संज्ञा तीन लेश्या पाँच इन्द्रियाधीनता।
आर्त-रौद्र कुध्यान अर कुज्ञान है पापप्रदा।। १४०।।

ॐ ह्रीं पापास्रवनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०१।।

अब, संवर पदार्थ का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

कषाय-संज्ञा इन्द्रियों का निग्रह करें सन् मार्ग से।
वह मार्ग ही संवर कहा, आस्रव निरोधक भाव से।। १४१ ।।

(गाथा)

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा बेंति।। १३८ ।।
चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसएसु।
परपरिदावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि।। १३९ ।।
सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अट्टरुद्दाणि।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति।। १४० ।।
इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठु मग्गम्हि।
जावत्तावत्तेसिं पिहिदं पावासवच्छिद्दं।। १४१ ।।

जिनको न रहता राग-द्वेष अर मोह सब परद्रव्य में।
आस्रव उन्हें होता नहीं, रहते सदा समभाव में।। १४२ ।।

जिस व्रती के त्रय योग में जब पुण्य एवं पाप ना।
उस व्रती के उस भाव से तब द्रव्य संवर वर्तता।। १४३ ।।

ॐ ह्रीं संवरपदार्थनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०२।।

अब, निर्जरा पदार्थ का वर्णन करते हैं -

(हरिगीत)

शुद्धोपयोगी भावयुत जो वर्तते हैं तपविषै।
वे नियम से निज में रमें बहु कर्म को भी निर्जरें।। १४४ ।।

आत्मानुभव युत आचरण से ध्यान आत्मा का धरें।
वे तत्त्वविद संवर सहित हो कर्म रज को निर्जरें।। १४५ ।।

ॐ ह्रीं निर्जरापदार्थनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०३।।

अब, ध्यान का स्वरूप कहते हैं -

(हरिगीत)

नहिं राग-द्वेष-विमोह अरु नहिं योग सेवन है जिसे।
प्रगटी शुभाशुभ दहन को, निज ध्यानमय अग्नि उसे।। १४६ ।।

ॐ ह्रीं ध्यानस्वरूपप्रतिपादक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०४।।

(गाथा)

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स।। १४२ ।।
जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स।। १४३ ।।
संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं।। १४४ ।।
जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं।। १४५ ।।
जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायदे अगणी।। १४६ ।।

अब, बंधपदार्थ का निरूपण कहते हैं –

(हरिगीत)

आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभ भाव को।
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को।। १४७ ।।

है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन–मन जनित हैं।
है भाव हेतुक बन्ध अर भाव रतिरुष सहित है।। १४८।।

प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे।
रागादि कारण उन्हें भी, रागादि बिन वे ना बंधे।। १४९ ।।

ॐ ह्रीं बंधपदार्थनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०५।।

अब, भाव मोक्ष का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से।
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके।। १५० ।।

कर्म आस्रवरोध से सर्वत्र समदर्शी बने।
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों।। १५१ ।।

ॐ ह्रीं भावमोक्षनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह–जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०६।।

(गाथा)

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण।। १४७ ।।
जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो।। १४८ ।।
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति।। १४९ ।।
हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आस्रवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।। १५० ।।
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।। १५१ ।।

अब, निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को।। १५२ ।।

ॐ ह्रीं निर्जराकारणभूतध्यानप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०७।।

अब, द्रव्यमोक्ष का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।। १५३ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यमोक्षपदार्थनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०८।।

अब, मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

चेतन स्वभाव अनन्यमय निर्बाध दर्शन-ज्ञान है।
दृग ज्ञानस्थित अस्तित्व ही चारित्र जिनवर ने कहा।। १५४ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०९।।

(गाथा)

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।। १५२ ।।
जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।। १५३ ।।
जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं।। १५४ ।।

अब, अब स्वसमय-परसमयरूप चारित्र का स्वरूप कहते हैं -

(हरिगीत)

स्व समय स्वयं से नियत है पर भाव अनियत पर समय।
चेतन रहे जब स्वयं में तब कर्मबंधन पर विजय।। १५५ ।।

जो राग से पर द्रव्य में करते शुभाशुभ भाव हैं।
परचरित में लवलीन वे स्व-चरित्र से परिभ्रष्ट है।। १५६ ।।

पुण्य एवं पाप आस्रव आतम करे जिस भाव से।
वह भाव है परचरित ऐसा कहा है जिनदेव ने।। १५७ ।।

जो सर्व संगविमुक्त एवं अनन्य आत्मस्वभाव से।
जाने तथा देखे नियत रह उसे चारित्र है कहा।। १५८ ।।

पर द्रव्य से जो विरत हो निजभाव में वर्तन करे।
गुणभेद से भी पार जो वह स्व-चरित को आचरे।। १५९ ।।

ॐ ह्रीं स्व-समयपरसमयचारित्रस्वरूपनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रह-जिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११०।।

(गाथा)

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो।। १५५ ।।
जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो।। १५६ ।।
आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति।। १५७ ।।
जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो।। १५८ ।।
चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो।। १५९ ।।

अब, व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग बताते हैं -

(हरिगीत)

धर्मादि की श्रद्धा सुदृग पूर्वांग बोध-सुबोध है।
तप माँहि चेष्टा चरण मिल व्यवहार मुक्तिमार्ग है।। १६० ।।

जो जीव रत्नत्रय सहित आत्म चिन्तन में रमे।
छोड़े ग्रहे नहिं अन्य कुछ शिवमार्ग निश्चय है यही।। १६१ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १११।।

अब, आत्मा ही चारित्र, ज्ञान, दर्शन है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

देखे जाने आचरे जो अनन्यमय निज आत्म को।
वे जीव दर्शन-ज्ञान अर चारित्र हैं निश्चयपने।। १६२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मैव चारित्रज्ञानदर्शन-इतिप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११२।।

अब, भव्य व अभव्य का स्वरूप कहते हैं -

(हरिगीत)

जाने-देखे सर्व जिससे हो सुखानुभव उसी से।
यह जानता है भव्य ही श्रद्धा करे ना अभव्य जिय।। १६३ ।।

ॐ ह्रीं भव्याभव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११३।।

(गाथा)

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।। १६० ।।
णिच्छयणएण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।। १६१ ।।
जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि।। १६२ ।।
जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभवियसत्तो ण सद्दहदि।। १६३ ।।

अब, दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग और बंधमार्ग है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

दृग-ज्ञान अर चारित्र मुक्तिपंथ मुनिजन ने कहे।
पर ये ही तीनों बंध एवं मुक्ति के भी हेतु हैं।। १६४।।

ॐ ह्रीं दर्शन-ज्ञान-चारित्रैव मोक्षमार्गबंधमार्गश्च-इतिनिरूपक श्रीपंचास्ति-कायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११४।।

अब, शुभभाव से मुक्ति होती है, ऐसा माननेवालों को सूक्ष्म परसमय कहते हैं - (हरिगीत)

शुभभक्ति से दुखमुक्त हो जाने यदि अज्ञान से।
उस ज्ञानी को भी परसमय ही कहा है जिनदेव ने।। १६५ ।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मपरसमयप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११५।।

अब, भक्ति से कर्मक्षय नहीं होता यह बताते हैं -

(हरिगीत)

अरहंत सिद्ध मुनिशास्त्र की अर चैत्य की भक्ति करे।
बहु पुण्य बंधता है उसे पर कर्मक्षय वह नहि करे।। १६६ ।।

ॐ ह्रीं भक्तिकर्मक्षयनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११६।।

(गाथा)

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा।। १६४ ।।
अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।। १६५ ।।
अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि।। १६६ ।।

अब, स्वसमय की उपलब्धि न होने में राग को एकमात्र कारण बताते हैं –

(हरिगीत)

अणुमात्र जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति राग है।
हो सर्व आगमधर भले जाने नहीं निजभक्ति को।। १६७ ।।

ॐ ह्रीं स्वसमयानुपलब्धेः रागैककारणप्ररूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११७।।

अब, रागादि का अभाव करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

चित्त भ्रम से रहित हो निःशंक जो होता नहीं।
हो नहीं सकता उसे संवर अशुभ अर शुभ दुःख का।। १६८ ।।
निःसंग निर्मम हो मुमुक्षु सिद्ध की भक्ति करें।
सिद्धसम निज में रमन कर मुक्ति कन्या को वरें।। १६९ ।।

ॐ ह्रीं रागादि-अभावप्रेरक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११८।।

अब, अरहन्तादि की भक्ति में मोक्षहेतुपने का अभाव दर्शाते हैं –

(हरिगीत)

तत्त्वार्थ अर जिनवर प्रति जिसके हृदय में भक्ति है।
संयम तथा तप युक्त को भी दूरतर निर्वाण है।। १७० ।।

ॐ ह्रीं भक्तेः मुक्त्युपायत्वनिषेधक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११९।।

(गाथा)

जस्स हिदएणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि।। १६७ ।।
धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स।। १६८ ।।
तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेस कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि।। १६९ ।।
सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।। १७० ।।

अब, अरहंतादि की भक्ति स्वर्ग का कारण है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

अरहंत–सिद्ध–जिनवचन सह जिनप्रतिमाओं के भजन को।
संयम सहित तप जो करें वे जीव पाते स्वर्ग को।। १७१।।

ॐ ह्रीं अरहंतादिभक्तिस्वर्गहेतुनिरूपक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२०।।

अब, मोक्षमार्ग का सार वीतरागता बताते हैं –

(हरिगीत)

यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो।। १७२ ।।

ॐ ह्रीं वीतरागताप्रेरक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२१।।

अब, ग्रन्थसमापन की सूचना देते हैं –

(हरिगीत)

प्रवचनभक्ति से प्रेरित सदा यह हेतु मार्ग प्रभावना।
दिव्यध्वनि का सारमय यह ग्रन्थ मुझसे है बना।। १७३ ।।

ॐ ह्रीं ग्रन्थोपसंहारक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२२।।

(गाथा)

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।। १७१ ।।
तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।। १७२ ।।
मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगह सुत्तं।। १७३ ।।

जयमाला

(दोहा)

पूजन अर अर्घ्यावली पूर्ण हुई साधार।
अब जयमाला में सुनो द्वितीय कंध का सार।। १ ।।

(मानव)

निज आतम को पहिचाने निज को ही अपना माने।
यह निश्चय सम्यग्दर्शन निज में अपनापन ठाने।।
जो नव तत्त्वार्थ बताये जिनवर की दिव्यध्वनि में।
रे सम्यग्दर्शन कहते उनकी सम्यक् श्रद्धा को ।। २ ।।

दो द्रव्य तत्त्व हैं उनमें जो जीव-अजीव कहे हैं।
रे शेष तत्त्व सब इनके ही हैं विशेष तुम जानो।।
पर्याय तत्त्व हैं वे सब रे पुण्य पाप अर आस्रव।
संवर निर्जरा अरे रे तुम बंध मोक्ष पहिचानो ।। ३ ।।

ये नौ तत्त्वार्थ बखाने जो सभी चेतनाचेतन।
इनमें जो देखे जाने वे जीव तत्त्व सब चेतन।।
पुद्गल नभ धर्म-अधर्म अर काल न कोई चेतन।
जो नहीं जानते कुछ भी वे सभी अजीव अचेतन ।। ४ ।।

शुभ और अशुभभावों से हो पुण्य-पाप का आस्रव।
अर पुण्य-पाप बंधते हैं - ये सब हैं भव के कारण।।
भव का अभाव करना है तो इन्हें त्यागना होगा।
जो शुद्धभावमय संवर उसको अपनाना होगा ।। ५ ।।

शुद्धभाव से भाई संवर निर्जर अर मुक्ति।
होता है सुखमय जीवन होती है दुख से मुक्ति।।
रे शुद्धभाव की महिमा का पार नहीं है जग में।
अर पुण्य-पाप भावों का स्थान न मुक्तिमग में ।। ६ ।।

पुण्य-पाप भावों को जिन[१] अशुद्धभाव कहते हैं।
उन भावों से ही भाई शुभ-अशुभ कर्म बंधते हैं।।
शुभ-अशुभ कर्म बंधते हैं कर्मों का आस्रव होता।
उनके ही कारण प्राणी भवसागर में रुलते हैं।। ७ ।।

उन पुण्य-पाप भावों को तुम आस्रव-बंध ही जानो।
उनके समान ही इनको[२] तुम हेय तत्त्व पहिचानो।।
संवर निर्जरा अर मुक्ति को उपादेय ही मानो।
अपने से भिन्न सभी को तुम ज्ञेयरूप ही जानो।। ८ ।।

इक आतम अपना भाई है परमज्ञेय सब जग में।
श्रद्धेय ध्येय सब जग में उपयोगी मुक्तिमग में।।
उसका ही ध्यान करो तुम उसको ही अपना जानो।
उसमें ही लीन रहो तुम उसमें ही जम-रम जावो।। ९ ।।

जहाँ सप्ततत्त्व की भाई रे बात कही जाती है।
तहाँ पुण्य-पाप को भाई इनमें[३] शामिल करते हैं।।
ये सभी[४] हेय हैं इक से इनमें कोइ भेद नहीं है।
इन सबको छोड़ो भाई कोइ करने योग्य नहीं है।। १०।।

(सोरठा)

पुण्य-पाप से पार निज आतम का धर्म है।
महिमा अपरंपार निज आतम के धर्म की।। ११ ।।

(दोहा)

रत्नत्रय तत्त्वार्थ का है स्वरूप स्पष्ट।
इन्हें जानकर भव्यजन होवें भव से भ्रष्ट[५]।। १२ ।।

---

१. जिनेन्द्र भगवान २. आस्रव-बंध के समान ही पुण्य-पाप को भी हेय जानो।
३. आस्रव-बंध में। ४. आस्रव-बंध-पुण्य-पाप ५. संसार से छूट जावें।

महाऽर्घ्य

(अडिल्ल[१])

पंच परम परमेष्ठी पूजूँ भाव से।
उनकी वाणी पूजूँ अधिक उछाह से।।
रतनत्रयमय परम शुद्ध उपयोग है।
दश धर्मों से मंडित पावन योग है।। १ ।।
गिरि कैलाश महान और पावापुरी।
सम्मेदाचल गिरनारी चम्पापुरी।।
आदि अनेकों सिद्धक्षेत्र मन भावने।
और अनेकों अतिशय क्षेत्र सुहावने।। २ ।।
तीन लोक में थान-थान अति ही घने।
कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय बने।।
इन सबकी पूजन करता हूँ चाव से।
बारह भावन भाऊँ अति उत्साह से।। ३ ।।
धर्मध्यान शुद्धोपयोग का योग है।
और परम तप स्वाध्याय संयोग है।।
यह सब चाहूँ और न कोई चाह है।
इन सबमें ही मेरा अति उत्साह है।। ४ ।।

(दोहा)

एकमात्र आराध्य है अपना ज्ञायकभाव।
उसमें तन्मय होय तो होय विभाव अभाव।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नमः श्री सम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः सर्वपूज्यपदेभ्यो नमः महार्घ्यं....

---

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? .... की धुन पर गायें।

शान्ति पाठ

(हरिगीत)

हे शान्ति के सागर जिनेश्वर! शान्ति के ही रूप हो।
नासाग्रदृष्टि शान्त मुद्रा स्वयं शान्तिस्वरूप हो।।
सारे जगत में शान्ति हो सारा जगत यह चाहता।
किन्तु सारे जगत को अपना बनाना चाहता।। १ ।।

जबकि इक अणुमात्र भी तो जगत में इसका नहीं।
अधिक क्या अणुमात्र को अपना बना सकता नहीं।।
यह बात शाश्वत सत्य है कोई किसी का रंच भी।
अच्छा-बुरा या अन्य कुछ भी कभी कर सकता नहीं।। २ ।।

मारना अर बचाना या दु:ख-सुख का दान भी।
कोई किसी का ना करे आदान और प्रदान भी।।
यह बात केवलि ने कही जिनशास्त्र में उल्लेख है।
जैन शासन में समझ लो यह छठी का लेख है।। ३ ।।

शान्ति और अशान्ति ये तो आतमा के भाव हैं।
कोई किसी के क्यों करे ये तो स्वयं के भाव हैं।।
रे स्वयं मिथ्या मान्यता को बुद्धिपूर्वक छोड़ दें।
एवं स्वयं ही स्वयं में निज आतमा को जोड़ दें।। ४ ।।

शान्ति होती प्राप्त केवल आतमा के ज्ञान से।
आतमा के ज्ञान से अर आतमा के ध्यान से।।
यह ही परम सत्यार्थ है यह ही परम भूतार्थ है।
और सब व्यवहार है बस एक यह परमार्थ है।। ५ ।।

व्यवहार से हम भावना भाते सुखी संसार हो।
सुख-शान्ति चारों ओर हो ना समृद्धि का पार हो।।
अनुकूलता हो सब तरफ न आर हो न पार हो।
अधिक क्या अब हम कहें बस सब सुखी संसार हो।। ६ ।।

(दोहा)

सभी जीव इस लोक के सुखी रहें सर्वत्र।
मौसम की अनुकूलता बनी रहे सर्वत्र ।। ७ ।।

प्राप्त करें सब जगत में निज आनन्द अपार।
निज आतम का ध्यान धर आतम शान्ति अपार।। ८।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

विसर्जन पाठ

(दोहा)

जो कुछ जैसी बन पड़ी अपनी शक्ति प्रमाण।
हमने पूजन की प्रभो अपनी भक्ति प्रमाण।। १ ।।

हमने जाना जो प्रभो जिनवाणी का मर्म।
उसके ही अनुसार सब यह व्यवहारिक धर्म।। २ ।।

इसमें जो कुछ रहीं हों कमियाँ विविध प्रकार।
विधि के जाननहार जन इसमें करें सुधार।। ३ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचास्तिकायसंग्रह भक्ति

(मानव)

यह कुन्दकुन्द की रचना.....

यह कुन्दकुन्द की रचना अद्भुत है अजब निराली।
षट्द्रव्य बतानेवाली तत्त्वार्थ बतानेवाली।। टेक।।

पंच अस्तिकायों का अति सरल सुगम प्रतिपादन।
सत्लक्षण षट्द्रव्यों का वर्णन विध-विध मनभावन।।
यह कुन्दकुन्द की रचना अद्भुत है अजब निराली।
षट्द्रव्य बतानेवाली तत्त्वार्थ बतानेवाली।। १ ।।

तत्त्वार्थ बताये इसमें उनका सतर्क प्रतिपादन।
अर तीन रतन समझाये मुक्तिमग में अति पावन।।
यह कुन्दकुन्द की रचना अद्भुत है अजब निराली।
षट्द्रव्य बतानेवाली तत्त्वार्थ बतानेवाली।। २ ।।

सम्यग्दर्शन भवनाशक सद्ज्ञान और सत् संयम।
हैं तीन रतन इस जग में समभावमयी हो जीवन।।
यह कुन्दकुन्द की रचना अद्भुत है अजब निराली।
षट्द्रव्य बतानेवाली तत्त्वार्थ बतानेवाली।। ३ ।।

इसको जो पढ़ें-पढ़ावें वे सम्यग्दर्शन पावें।
सद्ज्ञानपूर्वक संयम धरकर मुक्ति में जावें।।
यह कुन्दकुन्द की रचना अद्भुत है अजब निराली।
षट्द्रव्य बतानेवाली तत्त्वार्थ बतानेवाली।। ४ ।।

(दोहा)

पंचास्तिकाय सद्ग्रन्थ में प्रतिपादित जो पंथ।
उस पर जो जन चलत हैं उनके भव का अंत।। ५ ।।

-●-

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका ५०.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५ १२५.००
७. समयसार का सार ३०.००
८. गाथा समयसार १०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका ५०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३ ९५.००
१३. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन २०.००
१४. प्रवचनसार का सार ३०.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका ५०.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३ ७०.००
१८. छहढाला का सार १५.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार ३०.००
२०. वैराग्य महाकाव्य २५.००
२१. समयसार महामण्डल विधान २५.००
२२. समयसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) ३५.००
२३. प्रवचनसार महामण्डल विधान २०.००
२४. प्रवचनसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) २०.००
२५. नियमसार महामण्डल विधान २५.००
२६. नियमसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) ३०.००
२७. अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान २५.००
२८.दर्शन-सूत्र-चारित्रपाहुड़ मण्डल विधान १०.००
२९. बढ़ते कदम १०.००
३०. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय १५.००
३१. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व २०.००
३२. परमभावप्रकाशक नयचक्र ४०.००
३३. चिन्तन की गहराइयाँ ३०.००
३४. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ २५.००
३५. धर्म के दशलक्षण २०.००
३६. क्रमबद्धपर्याय २०.००
३७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध) २०.००
३८. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध) १०.००
३९. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण) ३०.००
४०. बिखरे मोती १६.००
४१. सत्य की खोज २५.००
४२. अध्यात्म नवनीत १५.००
४३. आप कुछ भी कहो १५.००
४४. आत्मा ही है शरण १५.००
४५. मुक्ति-सुधा १८.००
४६. बारह भावना : एक अनुशीलन १६.००
४७. दृष्टि का विषय १०.००
४८. गागर में सागर ७.००
४९. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव १२.००
५०. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन १५.००
५१. रक्षाबन्धन और दीपावली ५.००
५२. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम ५.००
५३. युगपुरुष कानजीस्वामी ५.००
५४. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका २०.००
५५. योगसार अनुशीलन २५.००
५६. योगसार महामण्डल विधान ८.००
५७. द्रव्यसंग्रह महामण्डल विधान ७.००
५८. मैं कौन हूँ ११.००
५९. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का १०.००
६०. निमित्तोपादान ८.००
६१. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में ५.००
६२. मैं स्वयं भगवान हूँ ५.००
६३-६४. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति ४.००
६५. शाकाहार ५.००
६६. भगवान ऋषभदेव ४.००
६७. तीर्थंकर भगवान महावीर ३.००
६८. चैतन्य चमत्कार ४.००
६९. गोली का जवाब गाली से भी नहीं २.००
७०. गोम्मटेश्वर बाहुबली २.००
७१. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर २.००
७२. अनेकान्त और स्याद्वाद ३.००
७३. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर ६.००
७४. बिन्दु में सिन्धु २.५०
७५. जिनवरस्य नयचक्रम १०.००
७६. पश्चात्ताप खण्डकाव्य १०.००
७७. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना २.००
७८. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद २.५०
७९. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद १.००
८०. समयसार पद्यानुवाद ३.००
८१. योगसार पद्यानुवाद १.००
८२. समयसार कलश पद्यानुवाद ३.००
८३. प्रवचनसार पद्यानुवाद ३.००
८४. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद १.००
८५. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद ३.००
८६. नियमसार पद्यानुवाद २.५०
८७. नियमसार कलश पद्यानुवाद ५.००
८८. सिद्धभक्ति १०.००
८९. अर्चना जेबी १.५०
९०. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित) ५.००
९१. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित) ५.००
९२-९३. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३ ८.००
९४-९५. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३ १५.००
९६-९७. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २ १२.००
९८. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि ३.००
९९. समाधिमरण या सल्लेखना ५.००
१००. ये है मेरी नारियाँ ५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ) १५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन ३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्न अरुणकुमार जैन १२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बसल २५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य ५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल ५.००
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्न सीमा जैन २५.००

प्रकाशनाधीन

१. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्न नीतू चौधरी
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ह्न शिखरचन्द जैन
३. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्न ममता गुप्ता